(ग) इससे वह उसे पहचान न सकी। (मुख्य उपवाक्य, ख का समानाधिकरण; ख का परिणाम-बोधक)

(घ) और उसने यही जाना। (मुख्य उपवाक्य क का; ग का समानाधिकरण)

(ङ) कि नौकर ही चुपचाप निकल जाता है। (आश्रित संज्ञा-उपवाक्य; घ का कर्म)

मध्य हिंदी-व्याकरण

रचयिता

कामताप्रसाद गुरु

(काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा की ओर से)

प्रकाशक

इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग

१९३८

भूमिका

यह संस्करण "संक्षिप्त हिंदी-व्याकरण" को और भी संक्षिप्त करके तैयार किया गया है। हिंदी और अँगरेज़ी की मध्य कक्षाओं के लिए उपयुक्त हिंदी व्याकरण की योजना के विचार से इस संस्करण की रचना हुई है। इन कक्षाओं के विद्यार्थियों के लिए जो जो विषय-खंड अनुभव से उपयोगी सिद्ध हुए हैं, उन्हीं का समावेश इस "मध्य हिंदी-व्याकरण" में किया गया है।

पुस्तक की भाषा को भी यथा-साध्य सरल करने का प्रयत्न किया गया है; पर विचारात्मक विषयों को सरल भाषा में लिखना सदैव संभव नहीं होता और इनमें शिक्षक की सहायता की आवश्यकता बनी रहती है।

यदि कोई अनुभवी शिक्षक इस पुस्तक के दोष सुझाने की कृपा करेंगे तो अगले संस्करण में हम उनकी सूचनाओं को धन्यवाद-पूर्वक उपयोग में लावेंगे।

जबलपुर,
विजयादशमी
सं० १९८०

कामताप्रसाद गुरु

विषय-सूची

प्रस्तावना

मध्य हिंदी-व्याकरण

प्रस्तावना

---

(१) भाषा

भाषा वह साधन है जिसके द्वारा मनुष्य अपने विचार दूसरों पर भली भाँति प्रकट कर सकता है और दूसरों के विचार आप समझ सकता है। मनुष्य के कार्य उसके विचारों से उत्पन्न होते हैं; और इन कार्यों में दूसरों की सहायता अथवा सम्मति प्राप्त करने के लिए उसे वे विचार प्रकट करने पड़ते हैं।

जब हम उपस्थित लोगों पर अपने विचार प्रकट करते हैं, तब बहुधा **कथित** भाषा काम में लाते हैं; पर जब हमें अपने विचार दूरवर्ती मनुष्यों के पास पहुँचाने का काम पड़ता है, अथवा भावी संतति के लिए उनके संग्रह की आवश्यकता होती है, तब हम **लिखित** भाषा का प्रयोग करते हैं। पहले

पहले केवल बोली हुई भाषा का प्रचार था; पर पीछे से विचारों को स्थायी रूप देने के लिए कई प्रकार की **लिपियाँ** निकाली गईं।

(२) भाषा और व्याकरण

किसी भाषा की रचना को ध्यानपूर्वक देखने से जान पड़ता है कि उसमें जितने शब्दों का उपयोग होता है, वे सभी भिन्न भिन्न **प्रकार** की भावनाएँ प्रकट करते हैं; और अपने उपयोग के अनुसार कोई अधिक और कोई कम आवश्यक होते हैं। फिर, एक ही भावना को कई रूपों में प्रकट करने के लिए शब्द के भी कई **रूपांतर** हो जाते हैं। भाषा में यह भी देखा जाता है कि कई शब्द दूसरे शब्दों से बनते हैं और उनसे एक नया ही अर्थ पाया जाता है। वाक्य में शब्दों का उपयोग किसी विशेष **क्रम** से होता है और उनमें रूप अथवा अर्थ के अनुसार परस्पर संबंध रहता है। जिस **शास्त्र** में शब्दों के शुद्ध रूप और प्रयोग के नियमों का निरूपण होता है, उसे **व्याकरण** कहते हैं। व्याकरण (वि + आ + करण) शब्द का अर्थ "भली भाँति समझाना" है।

(३) व्याकरण के विभाग

व्याकरण भाषा-संबंधी शास्त्र है और भाषा का मुख्य अंग **वाक्य** है। वाक्य **शब्दों** से बनता है और शब्द बहुधा **मूल-ध्वनियों** से। लिखी हुई भाषा में एक मूल-ध्वनि के लिए

प्रायः एक चिह्न रहता है जिसे **वर्ण** कहते हैं। वर्ण, शब्द और वाक्य के विचार से व्याकरण के मुख्य तीन विभाग होते हैं—(१) वर्ण-विचार, (२) शब्द-साधन और (३) वाक्य-विन्यास।

(१) **वर्ण-विचार** व्याकरण का वह विभाग है जिसमें वर्णों के आकार, उच्चारण और उनके मेल से शब्द बनाने के नियम दिये जाते हैं।

(२) **शब्द-साधन** व्याकरण के उस विभाग को कहते हैं जिसमें शब्दों के भेद, रूपांतर और व्युत्पत्ति का वर्णन रहता है।

(३) **वाक्य-विन्यास** व्याकरण के उस विभाग का नाम है जिसमें वाक्यों के अवयव का परस्पर संबंध बताया जाता है और शब्दों से वाक्य बनाने के नियम दिये जाते हैं।

जैसे, अं, अः। व्यंजनों के समान इनके उच्चारण में भी स्वर की आवश्यकता होती है; पर अंतर यह है कि स्वर इनके पहले आता है और दूसरे व्यंजनों के पीछे; जैसे, अ + ं, क् + अ।

दूसरा अध्याय

लिपि

७—लिखित भाषा में मूल-ध्वनियों के लिए जो चिह्न मान लिये गये हैं, वे भी **वर्ण** कहलाते हैं। जिस रूप में ये वर्ण लिखे जाते हैं, उसे **लिपि** कहते हैं। हिंदी-भाषा देवनागरी लिपि* में लिखी जाती है।

८—व्यंजनों के अनेक उच्चारण दिखाने के लिए उनके साथ स्वर जोड़े जाते हैं। स्वर अथवा स्वरांत व्यंजन **अक्षर** कहलाते हैं। व्यंजनों में मिलने से स्वर का जो रूप बदल जाता है, उसे **मात्रा** कहते हैं। प्रत्येक स्वर की मात्रा नीचे लिखी जाती है—

अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ए, ऐ, ओ, औ

ा ि ी ु ू ृ े ै ो ौ

---

*'देवनागरी' शब्द का अर्थ है 'देवताओं के नगर से संबंध रखने-वाली'। जान पड़ता है कि आर्य्य लोग अपने को अनार्यों से श्रेष्ठ समझकर देवता मानते थे।

९—अ की कोई मात्रा नहीं है। जब वह व्यंजन में मिलता है तब व्यंजन के नीचे का चिह्न (्) नहीं लिखा जाता; जैसे क्+अ=क।

१०—उ और ऊ की मात्राएँ जब र् में मिलती हैं, तब उनका आकार कुछ निराला हो जाता है; जैसे, रु, रू।

११—ऋ की मात्रा को छोड़कर और अं, अः को लेकर व्यंजनों के साथ सब स्वरों के मिलाप को बारहखड़ी कहते हैं। क् की बारहखड़ी नीचे दी जाती है—

क, का, कि, की, कु, कू, के, कै, को, कौ, कं, कः।

१२—व्यंजन दो प्रकार से लिखे जाते हैं—(१) खड़ी पाई समेत (२) बिना खड़ी पाई के। ङ, छ, ट, ठ, ड, ढ, द, र दूसरे प्रकार के और शेष व्यंजन पहले प्रकार के हैं।

१३—नीचे लिखे वर्णों के दो दो रूप पाये जाते हैं— अ और अ, झ और झ, ण और ण।

१४—देवनागरी लिपि में वर्णों का उच्चारण और नाम तुल्य होने के कारण अक्षर के आगे 'कार' जोड़ कर उनका नाम सूचित करते हैं; जैसे, अकार, ककार, मकार, सकार से क्रमशः अ, क, म, स का बोध होता है।

१५—जब दो वा अधिक व्यंजनों के बीच में स्वर नहीं रहता, तब उनको संयुक्त व्यंजन कहते हैं; जैसे, क्य, स्म, त्र। संयुक्त व्यंजन बहुधा मिलाकर लिखे जाते हैं। हिंदी में प्रायः

तीन से अधिक व्यंजनों का संयोग नहीं होता; जैसे, स्तम्भ, मत्स्य, माहात्म्य।

१६—जब किसी व्यंजन का संयोग उसी व्यंजन के साथ होता है, तब वह संयोग द्वित्व कहलाता है, जैसे, अन्न, सत्ता।

१७—संयोग में जिस क्रम से व्यंजनों का उच्चारण होता है, उसी क्रम से वे लिखे जाते हैं; जैसे, अन्त, यत्न, अशक्त, सत्कार।

१८—क्ष, त्र, ज्ञ जिन व्यंजनों के मेल से बने हैं, उनका कुछ भी रूप संयोग में नहीं दिखाई देता, इसलिए कोई कोई उन्हें व्यंजनों के साथ वर्णमाला के अंत में लिख देते हैं। क् और ष के मेल से क्ष, त् और र् के मेल से त्र और ज् और ञ के मेल से ज्ञ बनता है।

१६—पाई (।) वाले आद्य वर्णों की पाई संयोग में गिर जाती है जैसे, प् + य = प्य, त् + थ = त्थ, त् + म् + य = त्म्य।

२०—ङ, छ, ट, ठ, ड, ढ, ह, ये सात व्यंजन संयोग के आदि में भी पूरे लिखे जाते हैं और इनके अंत का संयुक्त व्यंजन पूर्व वर्ण के नीचे बिना सिरे के लिखा जाता है; जैसे, अङ्कुर, उच्छ्वास, टट्टी, गड्ढा, हड्डी, प्रह्लाद, सह्याद्रि।

२१—कई संयुक्त अक्षर दो प्रकार से लिखे जाते हैं; जैसे, क् + क = क्क, क्क; व् + व = व्व, व्व; ल् + ल = ल्ल, ल्ल; क् + ल = क्ल, क्ल; श् + व = श्व, श्व; क्ष = क्ष, त्र = त्र, ज्ञ = ज्ञ।

२२—यदि रकार के पीछे कोई व्यंजन हो तो रकार उस व्यंजन के ऊपर यह रूप (̊) धारण करता है जिसे रेफ कहते हैं; जैसे, धर्म, सर्व, अर्थ। यदि रकार किसी व्यंजन के पीछे आता है तो उसका रूप दो प्रकार का होता है—

(अ) खड़ी पाईवाले व्यंजनों के नीचे रकार इस रूप (͵) से लिखा जाता है; जैसे, चक्र, भद्र, ह्रस्व, वज्र।

(आ) दूसरे व्यंजनों के नीचे उसका यह रूप (‸) होता है। जैसे, राष्ट्र, त्रिपुंड्र, कृच्छ्र।

[सूचना—व्रजभाषा में बहुधा र् + य का रूप, र‍्य होता है। जैसे, मार‍्यो, हार‍्यो।]

२३—ङ्, ञ्, ण्, न्, म्, अपने ही वर्ग के व्यंजनों से मिल सकते हैं; पर उनके बदले में विकल्प से* अनुस्वार आ सकता है; जैसे, गङ्गा = गंगा, चञ्चल = चंचल, पण्डित = पंडित, दन्त = दंत, कम्प = कंप।

२४—साधारण व्यंजनों के समान संयुक्त व्यंजनों में भी स्वर जोड़कर बारहखड़ी बनाते हैं; जैसे, क्र, क्रा, क्रि, क्री, क्रु, क्रू, क्रे, क्रै, क्रो, क्रौ, क्रं, क्रः।

तीसरा अध्याय

वर्णों का उच्चारण और वर्गीकरण

२५—मुख के जिस भाग से जिस अक्षर का उच्चारण होता है, उसे अक्षर का स्थान कहते हैं।

२६—स्थानभेद से वर्णों के नीचे लिखे अनुसार वर्ग होते हैं—

कंठ्य—जिनका उच्चारण कंठ से होता है; अर्थात् अ, आ, क, ख, ग, घ, ङ, ह और विसर्ग।

तालव्य—जिनका उच्चारण तालु से होता है; अर्थात् इ, ई, च, छ, ज, झ, ञ, य और श।

मूर्द्धन्य—जिनका उच्चारण मूर्द्धा से होता है; अर्थात् ट, ठ, ड, ढ, ण, र और ष।

दंत्य—जिनका उच्चारण ऊपर के दाँतों पर जीभ लगाने से होता है; अर्थात् त, थ, द, ध, न, ल और स।

ओष्ठ्य—जिनका उच्चारण ओठों से होता है; जैसे, उ, ऊ, प, फ, ब, भ, म।

अनुनासिक—जिनका उच्चारण मुख और नासिका से होता है; अर्थात् ङ, ञ, ण, न, म और अनुस्वार।

कंठ-तालव्य—जिनका उच्चारण कंठ और तालु से होता है; अर्थात् ए, ऐ।

कंठोष्ठ्य—जिनका उच्चारण कंठ और ओठों से होता है; अर्थात् ओ, औ।

दंतोष्ठ्य—जिनका उच्चारण दाँतों और ओठों से होता है; अर्थात् व।

(१) स्वर

२७—उत्पत्ति के अनुसार स्वरों के दो भेद हैं—(१) **मूल-स्वर** और (२) **संधि-स्वर**।

(१) जिन स्वरों की उत्पत्ति किसी दूसरे स्वर से नहीं है, उन्हें **मूल-स्वर** (वा **ह्रस्व**) कहते हैं। वे चार हैं—अ, इ, उ और ऋ।

(२) मूल-स्वरों के मेल से बने हुए स्वर **संधि-स्वर** कहलाते हैं; जैसे, आ, ई, ए, ऐ, ओ, औ।

२८—संधि-स्वरों के दो उपभेद हैं—(१) दीर्घ और (२) संयुक्त।

(१) किसी एक मूल-स्वर में उसी मूल-स्वर के मिलाने से जो स्वर उत्पन्न होता है, उसे **दीर्घ** कहते हैं; जैसे, अ + अ = आ, इ + इ = ई, उ + उ = ऊ, अर्थात् आ, ई, ऊ दीर्घ स्वर हैं।

[सूचना—ऋ + ऋ = ॠ, यह दीर्घ स्वर हिंदी में नहीं है।]

(२) भिन्न भिन्न स्वरों के मेल से जो स्वर उत्पन्न होता है, उसे **संयुक्त स्वर** कहते हैं; जैसे, अ + इ = ए, अ + उ = ओ।

२९—जाति के अनुसार स्वरों के दो भेद हैं—**सवर्ण** और **असवर्ण** अर्थात् सजातीय और विजातीय। समान

स्थान से उत्पन्न होनेवाले स्वरों को **सवर्ण** कहते हैं। जिन स्वरों के स्थान एक से नहीं होते, वे **असवर्ण** कहलाते हैं। अ, आ परस्पर सवर्ण हैं। इसी प्रकार इ, ई तथा उ, ऊ सवर्ण हैं। अ, इ वा अ, ऊ अथवा इ, ऊ असवर्ण स्वर हैं।

[सूचना—ए, ऐ, ओ, औ, इन संयुक्त स्वरों में परस्पर सवर्णता नहीं है; क्योंकि ये असवर्ण स्वरों से उत्पन्न हैं।]

३०—उच्चारण के अनुसार स्वरों के दो भेद और हैं—

(१) सानुनासिक (२) निरनुनासिक।

यदि मुँह से पूरा पूरा श्वास निकाला जाय तो शुद्ध—निरनुनासिक—ध्वनि निकलती है; पर यदि श्वास का कुछ भी अंश नाक से निकाला जाय, तो अनुनासिक ध्वनि निकलती है। अनुनासिक स्वर का चिह्न (ँ) चंद्रबिंदु कहलाता है; जैसे—गाँव, ऊँचा। अनुस्वार और अनुनासिक व्यंजनों के समान चंद्रबिंदु कोई स्वतंत्र वर्ण नहीं है; वह केवल अनुनासिक स्वर का चिह्न है।

३१—हिंदी में ऐ और औ का उच्चारण संस्कृत से भिन्न होता है। तत्सम शब्दों में उनका उच्चारण संस्कृत के ही अनुसार होता है; पर हिंदी में ऐ अय् और औ अव् के समान बोला जाता है; जैसे—

संस्कृत—मैनाक, सदैव, ऐश्वर्य, पौत्र, कौतुक।
हिंदी—है, कै, मैल, सुनै, और, चौथा।

(२) व्यंजन

३२—क से म तक व्यंजनों के पाँच वर्ग हैं और प्रत्येक वर्ग में पाँच पाँच व्यंजन हैं। प्रत्येक वर्ग का नाम पहले वर्ण के अनुसार रखा गया है।

क-वर्ग—क, ख, ग, घ, ङ। च-वर्ग—च, छ, ज, झ, ञ।

ट-वर्ग—ट, ठ, ड, ढ, ण। त-वर्ग—त, थ, द, ध, न।

प-वर्ग—प, फ, ब, भ, म।

३३—उच्चारण के अनुसार व्यंजनों के दो भेद और हैं—

(१) अल्पप्राण और (२) महाप्राण।

जिन व्यंजनों में हकार की ध्वनि विशेष रूप से सुनाई देती है, उनको **महाप्राण** और शेष व्यंजनों को **अल्पप्राण** कहते हैं। स्पर्श व्यंजनों में प्रत्येक वर्ग का दूसरा और चौथा अक्षर तथा ऊष्म महाप्राण हैं; जैसे, ख, घ, छ, झ, ठ, ढ, थ, ध, फ, भ, और श, ष, स, ह। शेष व्यंजन अल्प-प्राण हैं। सब स्वर अल्पप्राण हैं।

३४—हिंदी में **ड** और **ढ** के दो दो उच्चारण होते हैं—(१) मूर्द्धन्य, (२) द्विस्पृष्ट।

(१) **मूर्द्धन्य** उच्चारण नीचे लिखे स्थानों में होता है—

(क) शब्द के आदि में; जैसे, डाक, डमरू, डम, ढिग, ढँग।

(ख) द्वित्व में; जैसे, अड्डा, लड्डू, खड्ढा।

(ग) ह्रस्व स्वर के पश्चात् अनुनासिक व्यंजन के संयोग में; जैसे, डंड, पिंडी, चंड्ड, मंडप।

(२) **द्विस्पृष्ट** उच्चारण जिह्वा का अग्र भाग उलटा कर मूर्द्धा में लगाने से होता है। इस उच्चारण के लिए इन अक्षरों के नीचे एक एक बिंदी लगाई जाती है। द्विस्पृष्ट उच्चारण बहुधा नीचे लिखे स्थानों में होता है—

(क) शब्द के मध्य अथवा अंत में; जैसे—सड़क, पकड़ना, आड़, गढ़, चढ़ाना।

(ख) दीर्घ स्वर के पश्चात् अनुनासिक व्यंजन के संयोग में दोनों उच्चारण बहुधा विकल्प से होते हैं; जैसे—मूँडना, मूड़ना; खांड, खाँड़; मेंढा, मेंढ़ा।

३५—केवल स्पर्श-व्यंजनों* के एक एक वर्ग के लिए एक एक अनुनासिक व्यंजन है। अंतस्थ† और ऊष्म‡ के साथ अनुनासिक व्यंजन का कार्य अनुस्वार से निकलता है। अनुनासिक व्यंजनों के बदले में भी विकल्प से अनुस्वार आता है; जैसे, अङ्ग=अंग, कण्ठ—कंठ, अंश॥

३६—अनुस्वार के आगे कोई अंतस्थ व्यंजन, अथवा ह हो तो उसका उच्चारण दंत-तालव्य अर्थात् वँ के समान होता है; परंतु श, ष, स के साथ उसका उच्चारण बहुधा न् के समान होता है; जैसे, संवाद, संरक्षा, सिंह, अंश, हंस।

३७—अनुस्वार (ं) के उच्चारण में श्वास केवल नाक से निकलता है; पर अनुनासिक स्वर (ँ) के उच्चारण में वह मुख और नासिका से एक ही साथ निकाला जाता है। अनुस्वार

---

*क से म तक। † य, र, ल, व। ‡ श, ष, स, ह।

तीव्र और अनुनासिक धीमी ध्वनि है; परंतु दोनों के उच्चारण के लिए पूर्ववर्त्ती स्वर की आवश्यकता होती है; जैसे, रंग, रँग; कंबल, कँवल, वेदांत, दाँत; हंस, हँसना।

३८—विसर्ग (:) कंठ्य वर्ण है। इसके उच्चारण में ह् के उच्चारण को एक झटका सा देकर श्वास को मुँह से एकदम छोड़ते हैं। अनुस्वार वा अनुनासिक के समान विसर्ग का उच्चारण भी किसी स्वर के पश्चात् होता है। यह हकार की अपेक्षा कुछ धीमा बोला जाता है; जैसे, दुःख, अंतःकरण, छिः, हः।

३९—दो महाप्राण व्यंजनों का उच्चारण एक साथ नहीं हो सकता; इसलिए उनके संयोग में पूर्व वर्ण अल्पप्राण ही रहता है; जैसे, रक्खा, अच्छा, पत्थर।

४०—हिंदी में ज्ञ का उच्चारण बहुधा 'ग्यँ' के सदृश होता है। महाराष्ट्र लोग इसका उच्चारण 'द्न्यँ' के समान करते हैं। पर इसका शुद्ध उच्चारण प्रायः 'ज्यँ' के समान है।

[सूचना—उर्दू के प्रभाव से ज और फ का एक एक और उच्चारण होता है। ज़ का दूसरा उच्चारण दंत-तालव्य और फ का दंतोष्ठ्य है। इन उच्चारणों के लिए अक्षरों के नीचे एक एक बिंदी लगाते हैं; जैसे, फ़ुरसत, ज़रूरत, इत्यादि। ज़ और फ़ से अँगरेज़ी के भी कुछ अक्षरों का उच्चारण प्रकट होता है; जैसे, फ़ीस, स्वेज़।]

———

चौथा अध्याय

संधि

४१—दो निर्दिष्ट अक्षरों के पास आने के कारण उनके मेल से जो विकार होता है, उसे संधि कहते हैं। संधि और संयोग में (अंक १५) यह अंतर है कि संयोग में अक्षर जैसे के तैसे रहते हैं; परंतु संधि में उच्चारण के नियमानुसार दो अक्षरों के मेल में उनकी जगह कोई भिन्न अक्षर हो जाता है।

[सूचना—संधि का विषय संस्कृत व्याकरण से संबंध रखता है। हिंदी में संधि के नियमों से मिले हुए जो संस्कृत सामासिक शब्द आते हैं, उनके संबंध से इस विषय के निरूपण की आवश्यकता होती है।]

४२—संधि तीन प्रकार की है—(१) स्वर-संधि, (२) व्यंजन-संधि और (३) विसर्ग-संधि।

(१) दो स्वरों के पास पास आने से जो संधि होती है, उसे **स्वर-संधि** कहते हैं; जैसे, राम + अवतार = राम् + अ + अ + वतार = राम् + आ + वतार = रामावतार।

(२) जिन दो वर्णों में संधि होती है, उनमें से पहला वर्ण व्यंजन हो और दूसरा वर्ण चाहे स्वर हो चाहे व्यंजन, तो उनकी संधि को **व्यंजन-संधि** कहते हैं; जैसे, जगत् + ईश = जगदीश, जगत् + नाथ = जगन्नाथ।

(३) विसर्ग के साथ स्वर वा व्यंजन की संधि को **विसर्गसंधि** कहते हैं; जैसे, तपः + वन = तपोवन, निः + अंतर = निरंतर ।

(१) स्वर-संधि

४३—यदि दो सवर्ण स्वर पास पास आवें तो दोनों के बदले सवर्ण दीर्घ स्वर होता है; जैसे—

(क) अ और आ की संधि—

अ + अ = आ—कल्प + अंत = कल्पांत; परम + अर्थ = परमार्थ ।

अ + आ = आ—रत्न + आकर = रत्नाकर; कुश + आसन = कुशासन ।

आ + अ = आ—रेखा + अंश = रेखांश; विद्या + अभ्यास = विद्याभ्यास ।

आ + आ = आ—महा + आशय = महाशय; वार्ता + आलाप = वार्तालाप ।

(ख) इ और ई की संधि—

इ + इ = ई—गिरि + इंद्र = गिरींद्र ।

इ + ई = ई—कवि + ईश्वर = कवीश्वर ।

ई + ई = ई—जानकी + ईश = जानकीश ।

ई + इ = ई—मही + इंद्र = महींद्र ।

(ग) उ, ऊ की संधि—

उ + उ = ऊ—भानु + उदय = भानूदय ।

उ + ऊ = ऊ—लघु + ऊर्मि = लघूर्मि ।

ऊ + ऊ = ऊ—भू + ऊर्ध्व = भूर्ध्व ।

ऊ + उ = ऊ—वधू + उत्सव = वधूत्सव ।

४४—यदि अ वा आ के आगे इ वा ई रहे तो दोनों मिलकर ए; उ वा ऊ रहे तो दोनों मिलकर ओ; और ऋ रहे तो अर् हो जाता है। इस विकार को **गुण** कहते हैं।

उदाहरण

अ + इ = ए—देव + इंद्र = देवेंद्र ।

अ + ई = ए—सुर + ईश = सुरेश ।

आ + इ = ए—महा + इंद्र = महेंद्र ।

आ + ई = ए—रमा + ईश = रमेश ।

अ + उ = ओ—चंद्र + उदय = चंद्रोदय ।

अ + ऊ = ओ—समुद्र + ऊर्मि = समुद्रोर्मि ।

आ + उ = ओ—महा + उत्सव = महोत्सव ।

आ + ऊ = ओ—महा + ऊरु = महोरु ।

अ + ऋ = अर्—सप्त + ऋषि = सप्तर्षि ।

आ + ऋ = अर्—महा + ऋषि = महर्षि ।

४५—अकार वा आकार के आगे ए वा ऐ हो तो दोनों मिलकर ऐ; और ओ वा औ रहे तो दोनों मिलकर औ होता है। इस विकार को **वृद्धि** कहते हैं। यथा—

अ + ए = ऐ—एक + एक = एकैक ।

अ + ऐ = ऐ—मत + ऐक्य = मतैक्य ।

आ + ए = ऐ—सदा + एव = सदैव ।

आ + ऐ = ऐ—महा + ऐश्वर्य्य = महैश्वर्य ।

अ + ओ = औ—जल + ओघ = जलौघ ।

आ + ओ = औ—महा + ओज = महौज ।

अ + औ = औ—परम + औषध = परमौषध ।

आ + औ = औ—महा + औदार्य = महौदार्य ।

४६—ह्रस्व वा दीर्घ इकार, उकार वा ऋकार के आगे कोई असवर्ण स्वर आवे तो इ ई के बदले य्, उ ऊ के बदले व्, और ऋ के बदले र् होता है। इस विकार को **यण्** कहते हैं। जैसे—

(क) इ + अ = य—यदि + अपि = यद्यपि ।

इ + आ = या—इति + आदि = इत्यादि ।

इ + उ = यु—प्रति + उपकार = प्रत्युपकार ।

इ + ऊ = यू—नि + ऊन = न्यून ।

इ + ए = ये—प्रति + एक = प्रत्येक ।

ई + अ = य—नदी + अर्पण = नद्यर्पण ।

ई + आ = या—देवी + आगम = देव्यागम ।

ई + उ = यु—सखी + उचित = सख्युचित ।

ई + ऊ = यू—नदी + ऊर्मि = नद्यूर्मि ।

ई + ऐ = यै—देवी + ऐश्वर्य = देव्यैश्वर्य ।

(ख) उ + अ = व—मनु + अंतर = मन्वंतर ।

उ + आ = वा—सु + आगत = स्वागत ।

उ + इ = वि—अनु + इत = अन्वित ।

उ + ए = वे—अनु + एषण = अन्वेषण ।

(ग) ऋ + अ = र—पितृ + अनुमति = पित्रनुमति ।

ऋ + आ = रा—मातृ + आनंद = मात्रानंद ।

४७—ए, ऐ, ओ वा औ के आगे कोई भिन्न स्वर हो तो इनके स्थान में क्रमशः अय्, आय्, अव् वा आव् होता है; जैसे—

ने + अन = न् + ए + अ + न = न् + अय् + अ + न = नयन ।

गै + अन = ग् + ऐ + अ + न = ग् + आय् + अ + न = गायन ।

गो + ईश = ग् + ओ + ई + श = ग् + अव् + ई + श = गवीश ।

नौ + इक = न् + औ + इ + क = न् + आव् + इ + क = नाविक

(२) व्यंजन-सन्धि

४८—क, च, ट, प के आगे अनुनासिक को छोड़कर कोई घोष* वर्ण हो तो उसके स्थान में क्रम से वर्ग का तीसरा अक्षर हो जाता है; जैसे—

दिक् + गज = दिग्गज; वाक् + ईश = वागीश ।

षट् + रिपु = षड्रिपु, षट् + आनन = षडानन ।

अप् + ज = अब्ज, अच् + अंत = अजंत ।

४९—किसी वर्ग के प्रथम अक्षर से परे कोई अनुनासिक वर्ण हो तो प्रथम वर्ण के बदले उसी वर्ग का अनुनासिक वर्ण हो जाता है; जैसे—

---

* स्पर्श-व्यंजनों के प्रत्येक वर्ग के पिछले तीन अक्षर, अंतस्थ और स्वर ।

वाक् + मय = वाङ्मय; षट् + मास = षण्मास।

अप् + मय = अम्मय; जगत् + नाथ = जगन्नाथ।

५०—त् के आगे कोई स्वर, ग, घ, द, ध, ब, भ, अथवा य, र, व, रहे, तो त् के स्थान में द् होगा; जैसे—

सत् + आनंद = सदानंद; जगत् + ईश = जगदीश।

उत् + गम = उद्गम; सत् + धर्म = सद्धर्म।

भगवत् + भक्ति = भगवद्भक्ति; तत् + रूप = तद्रूप।

५१—त् वा द् के आगे च वा छ हो तो त् वा द् के स्थान में च् होता है; ज वा झ हो तो ज्; ट वा ठ हो तो ट्; ड वा ढ हो तो ड् और ल हो तो ल् होता है; जैसे—

उत् + चारण = उच्चारण; शरद् + चंद्र = शरच्चंद्र।

महत् + छत्र = महच्छत्र; सत् + जन = सज्जन।

विपद् + जाल = विपज्जाल; तत् + लीन = तल्लीन।

५२—त् वा द् के आगे श हो तो त् वा द् के बदले च् और श के बदले छ होता है, और त् वा द् के आगे ह हो तो त् वा द् के स्थान में द् और ह के स्थान में ध होता है; जैसे—

सत् + शास्त्र = सच्छास्त्र; उत् + हार = उद्धार।

५३—छ के पूर्व स्वर हो तो छ के बदले च्छ होता है; जैसे—

आ + छादन = आच्छादन, परि + छेद = परिच्छेद।

५४—म् के आगे स्पर्श वर्ण हो तो म् के बदले विकल्प से अनुस्वार अथवा उसी वर्ग का अनुनासिक वर्ण आता है; जैसे—

सम् + कल्प = संकल्प वा सङ्कल्प।

किम् + चित् = किंचित् वा किञ्चित् ।

सम् + तोष = संतोष वा सन्तोष ।

सम् + पूर्ण = संपूर्ण वा सम्पूर्ण ।

५५—म् के आगे अंतस्थ वा ऊष्म वर्ण हो तो म् अनुस्वार में बदल जाता है; जैसे—

किम् + वा = किंवा; सम् + हार = संहार ।

सम् + योग = संयोग; सम् + वाद = संवाद ।

५६—यौगिक* शब्दों में यदि प्रथम शब्द के अंत में न् हो तो उसका लोप होता है; जैसे—

राजन् + आज्ञा = राजाज्ञा; हस्तिन् + दंत = हस्तिदंत ।

प्राणिन् + मात्र = प्राणिमात्र; धनिन् + त्व = धनित्व ।

(३) विसर्ग-संधि

५७—यदि विसर्ग के आगे च वा छ हो तो विसर्ग का श् हो जाता है; ट वा ठ हो तो ष्; और त वा थ हो तो स् होता है; जैसे—

निः + चल = निश्चल; धनुः + टंकार = धनुष्टंकार ।

निः + छिद्र = निश्छिद्र; मनः + ताप = मनस्ताप ।

५८—विसर्ग के पश्चात् श्, ष् वा स् आवे तो विसर्ग जैसा का तैसा रहता है अथवा उसके स्थान में आगे का वर्ण हो जाता है; जैसे—

दुः + शासन = दुःशासन वा दुश्शासन ।

---

* दो शब्दों अथवा शब्द और प्रत्यय से मिलकर बने हुए ।

निः + संदेह = निःसंदेह वा निस्संदेह ।

५९—विसर्ग के आगे क, ख वा प, फ आवे तो विसर्ग का कोई विकार नहीं होता, जैसे--

रजः + कण = रजःकण; पयः + पान = पयःपान (हिं०—पयपान)

(अ) यदि विसर्ग के पूर्व इ वा उ हो तो क, ख वा प, फ के पहले विसर्ग के बदले ष् होता है; जैसे—

निः + कपट = निष्कपट; दुः + कर्म = दुष्कर्म ।

निः + फल = निष्फल; दुः + प्रकृति = दुष्प्रकृति ।

६०—यदि विसर्ग के पूर्व अ हो और आगे घोष-व्यंजन हो तो विसर्ग (अः) के बदले ओ हो जाता है; जैसे—

अधः + गति = अधोगति, मनः + योग = मनोयोग ।

तेजः + राशि = तेजोराशि; वयः + वृद्ध = वयोवृद्ध ।

[सूचना—वनोवास और मनोकामना शब्द अशुद्ध हैं ।

६१—यदि विसर्ग के पहले अ, आ को छोड़कर और कोई स्वर हो और आगे कोई घोष-वर्ण हो तो विसर्ग के स्थान में र् होता है; जैसे—

निः + आशा = निराशा; दुः + उपयोग = दुरुपयोग ।

निः + गुण = निर्गुण; बहिः + मुख = बहिर्मुख ।

(अ) यदि र् के आगे र हो तो र का लोप हो जाता है और उसके पूर्व का ह्रस्व स्वर दीर्घ कर दिया जाता है; जैसे—

निः + रस = नीरस; निः + रोग = नीरोग ।

दूसरा भाग

शब्द-साधन

पहला परिच्छेद

शब्द-भेद

पहला अध्याय

शब्द-विचार

६२—**शब्द-साधन** व्याकरण के उस विभाग को कहते हैं जिसमें शब्दों के **भेद, रूपांतर** और **व्युत्पत्ति** का निरूपण किया जाता है।

६३—एक या अधिक अक्षरों से बनी हुई स्वतंत्र सार्थक ध्वनि को **शब्द** कहते हैं; जैसे, लड़का, जा, छोटा, मैं, धीरे, परंतु।

(अ) शब्द अक्षरों से बनते हैं। 'न' और 'थ' के मेल से 'नथ' और 'थन' शब्द बनते हैं; और यदि इनमें 'आ' का योग कर दिया जाय तो 'नाथ', 'थान', 'नथा', 'थाना', आदि शब्द बन जायँगे।

(आ) सृष्टि के संपूर्ण प्राणियों, पदार्थों, धर्मों और उनके सब प्रकार के संबंधों को व्यक्त करने के लिए शब्दों का उपयोग होता है।

एक शब्द से एक ही भावना प्रकट होती है; इसलिए कोई पूर्ण विचार प्रकट करने के लिए एक से अधिक शब्दों का काम पड़ता है। 'आज तुझे क्या सूझी है ?'—यह एक पूर्ण विचार अर्थात् **वाक्य** है और इसमें पाँच शब्द हैं—आज, तुझे, क्या, सूझी, है। इनमें से प्रत्येक शब्द एक स्वतंत्र सार्थक ध्वनि है और उससे कोई एक भावना प्रकट होती है।

६४—भाषा में कुछ ध्वनियाँ ऐसी होती हैं जो स्वयं सार्थक नहीं होतीं, पर जब वे शब्दों के साथ जोड़ी जाती हैं तब सार्थक हो जाती हैं। ऐसी परतंत्र ध्वनियों को **शब्दांश** कहते हैं; जैसे, ता, पन, वाला, ने, को, इत्यादि। जो शब्दांश किसी शब्द के पहले जोड़ा जाता है, उसे **उपसर्ग** कहते हैं; और जो शब्दांश शब्द के पीछे जोड़ा जाता है वह **प्रत्यय** कहलाता है; जैसे, 'अशुद्धता' शब्द में 'अ' उपसर्ग और 'ता' प्रत्यय है।

६५—परस्पर संबंध रखनेवाले दो या अधिक शब्दों को, जिनसे पूरी बात नहीं जानी जाती, **वाक्यांश** कहते हैं; जैसे, 'घर का घर', 'सच बोलना', 'दूर से आया हुआ'।

६६—एक पूर्ण विचार व्यक्त करनेवाला शब्द-समूह **वाक्य** कहलाता है; जैसे, लड़के फूल चुन रहे हैं: विद्या से नम्रता प्राप्त होती है।

दूसरा अध्याय

शब्दों का वर्गीकरण

६७—किसी वस्तु के विषय में मनुष्य की भावनाएँ जितने प्रकार की होती हैं उन्हें सूचित करने के लिए शब्दों के उतने ही भेद होते हैं।

मान लो कि हम पानी के विषय में विचार करते हैं; तो हम 'पानी' या उसके और किसी समानार्थ-वाची शब्द का **प्रयोग** करेंगे। फिर यदि हम पानी के संबंध में कुछ कहना चाहें तो हमें 'गिरा' या कोई दूसरा शब्द कहना पड़ेगा। 'पानी' और 'गिरा' दो अलग अलग प्रकार के शब्द हैं, क्योंकि उनका **प्रयोग** अलग अलग है। 'पानी' शब्द एक पदार्थ का नाम सूचित करता है और 'गिरा' शब्द से हम उस पदार्थ के विषय में कुछ कहते हैं (**विधान** **करते** हैं)। व्याकरण में पदार्थ का नाम सूचित करनेवाले शब्द को **संज्ञा** कहते हैं और उस पदार्थ के विषय में विधान करनेवाले शब्द को **क्रिया** कहते हैं। 'पानी' शब्द संज्ञा और 'गिरा' शब्द क्रिया है।

'पानी' शब्द के साथ हम दूसरे शब्द लगाकर एक दूसरा ही विचार प्रकट कर सकते हैं; जैसे, 'मैला पानी बहा'। इस वाक्य में 'बहा' शब्द तो पानी के विषय में विधान करता है; परंतु 'मैला' शब्द न तो किसी पदार्थ का नाम सूचित करता है और न किसी पदार्थ के विषय में विधान ही करता है। 'मैला' शब्द पानी की विशेषता बताता है,

इसलिए वह एक अलग ही जाति का शब्द है। पदार्थ की विशेषता बतानेवाले शब्द को व्याकरण में **विशेषण** कहते हैं। 'मैला' शब्द विशेषण है। "मैला पानी अभी बहा"—इस वाक्य में 'अभी' शब्द 'बहा' क्रिया की विशेषता बतलाता है; इसलिए वह एक दूसरी ही जाति का शब्द है; और उसे **क्रियाविशेषण** कहते हैं। इसी तरह वाक्य में प्रयोग के अनुसार शब्दों के और भी भेद होते हैं।

प्रयोग के अनुसार शब्दों की भिन्न भिन्न जातियों को **शब्दभेद** कहते हैं। शब्दों की भिन्न भिन्न जातियाँ बताना उनका **वर्गीकरण** कहलाता है।

६८—अपने विचार प्रकट करने के लिए हमें भिन्न भिन्न भावनाओं के अनुसार एक शब्द को बहुधा कई रूपों में कहना पड़ता है।

मान लो कि हमें 'घोड़ा' शब्द का प्रयोग करके उसके वाच्य प्राणी की **संख्या** का बोध कराना है, तो हम 'घोड़ा' शब्द के अंत्य 'आ' के बदले 'ए' करके 'घोड़े' शब्द का प्रयोग करेंगे। 'पानी गिरा' इस वाक्य में यदि हम 'गिरा' शब्द से किसी और काल (समय) का बोध कराना चाहें तो हमें 'गिरा' के बदले 'गिरेगा' या 'गिरता है' करना पड़ेगा। इसी प्रकार और और शब्दों के भी **रूपांतर** होते हैं।

शब्द के **अर्थ** में हेरफेर करने के लिए उस (शब्द) के रूप में जो हेरफेर होता है, उसे **रूपांतर** कहते हैं।

६९—एक पदार्थ के नाम के संबंध से बहुधा दूसरे पदार्थों के नाम रखे जाते हैं; इसलिए एक शब्द से कई नये शब्द बनते

हैं; जैसे, 'दूध' से 'दूधवाला', 'दुधार', 'दुधिया' इत्यादि। कभी कभी दो या अधिक शब्दों के मेल से एक नया शब्द बनता है; जैसे, गंगा-जल, चौकोन, रायपुर, त्रिकालदर्शी।

एक शब्द से दूसरा नया शब्द बनाने की **प्रक्रिया** को **व्युत्पत्ति** कहते हैं।

७०—वाक्य में, **प्रयोग** के अनुसार, शब्दों के आठ भेद होते हैं—

(१) वस्तुओं के नाम बतानेवाले शब्द.............संज्ञा।

(२) वस्तुओं के विषय में विधान करनेवाले शब्द.....क्रिया।

(३) वस्तुओं की विशेषता बतानेवाले शब्द........विशेषण।

(४) विधान करनेवाले शब्दों की विशेषता बतानेवाले शब्द... ....क्रियाविशेषण।

(५) संज्ञा के बदले आनेवाले शब्द.................सर्वनाम।

(६) क्रिया से नामार्थक शब्दों का संबंध सूचित करनेवाले शब्द.........................संबंध-सूचक।

(७) दो शब्दों वा वाक्यों को मिलानेवाले शब्द समुच्चय-बोधक।

(८) मनोविकार सूचित करनेवाले शब्द... ..विस्मयादि-बोधक।

७१—**रूपांतर** के अनुसार शब्दों के दो भेद होते हैं—(१) विकारी, (२) अविकारी। अविकारी शब्दों को बहुधा अव्यय कहते हैं।

(१) जिस शब्द के रूप में कोई विकार होता है, उसे विकारी शब्द कहते हैं।

लड़का—लड़के, लड़कों, लड़की।

देख—देखना, देखा, देखूँ, देखकर।

(२) जिस शब्द के रूप में कोई विकार नहीं होता, उसे अविकारी शब्द वा **अव्यय** कहते हैं; जैसे, परंतु, अचानक, बिना, बहुधा, हाय।

७२—संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण और क्रिया विकारी शब्द हैं; और क्रियाविशेषण, संबंध-सूचक, समुच्चय-बोधक और विस्मयादि-बोधक अविकारी शब्द वा अव्यय हैं।

७३—व्युत्पत्ति के अनुसार शब्द दो प्रकार के होते हैं— (१) रूढ़ और (२) यौगिक।

(१) रूढ़ उन शब्दों को कहते हैं जो दूसरे शब्दों के योग से नहीं बने; जैसे, नाक, कान, पीला, झट, पर।

(२) जो शब्द दूसरे शब्दों के योग से बनते हैं, उन्हें यौगिक शब्द कहते हैं; जैसे, कतरनी, पीला-पन, दूध-वाला, झट-पट, घुड़-साल।

(अ) अर्थ के अनुसार यौगिक शब्दों का एक भेद योगरूढ़ कहलाता है जिससे कोई विशेष अर्थ पाया जाता है; जैसे, लंबोदर, गिरिधारी, पंकज, जलद। 'पंकज' शब्द के खंडों (पंक + ज) का अर्थ 'कीचड़ से उत्पन्न' है; पर उससे केवल कमल का विशेष अर्थ लिया जाता है।

———

पहला खंड
विकारी शब्द
पहला अध्याय
संज्ञा

७४—संज्ञा उस विकारी शब्द को कहते हैं जिससे सृष्टि की किसी वस्तु* का नाम सूचित हो; जैसे, घर, आकाश, गंगा, देवता, अक्षर, बल, जादू।

(क) 'संज्ञा' शब्द का उपयोग वस्तु के लिए नहीं होता, किंतु वस्तु के नाम के लिए होता है। जिस काग़ज़ पर यह पुस्तक छपी है, वह कागज संज्ञा नहीं है; किंतु वस्तु है। पर 'कागज़' शब्द, जिसके द्वारा हम उस पदार्थ का नाम सूचित करते हैं, संज्ञा है।

७५—संज्ञा दो प्रकार की होती है—(१) पदार्थवाचक, और (२) भाववाचक।

७६—जिस संज्ञा से किसी पदार्थ† वा पदार्थों के समूह का बोध होता है, उसे पदार्थवाचक संज्ञा कहते हैं; जैसे, राम, राजा, घोड़ा, कागज, काशी, सभा, भाड़।

---

* प्राणी, पदार्थ वा उनका धर्म।

† सजीव वा निर्जीव पदार्थ।

७७—पदार्थवाचक संज्ञा के दो भेद हैं—(१) व्यक्ति-वाचक और (२) जातिवाचक।

७८—जिस संज्ञा से एक ही पदार्थ वा पदार्थों के एक ही समूह का बोध होता है, उसे **व्यक्तिवाचक** संज्ञा कहते हैं; जैसे, राम, काशी, गंगा, महामंडल, हितकारिणी।

'राम' कहने से केवल एक ही व्यक्ति (अकेले मनुष्य) का बोध होता है; प्रत्येक मनुष्य को 'राम' नहीं कह सकते। यदि हम 'राम' को देवता मानें तो भी 'राम' एक ही देवता का नाम है। इसी प्रकार 'काशी' कहने से इस नाम के एक ही नगर का बोध होता है। यदि 'काशी' किसी स्त्री का नाम हो तो भी इस नाम से उस एक ही स्त्री का बोध होगा। नदियों में 'गंगा' एक ही व्यक्ति (अकेली नदी) का नाम है; यह नाम किसी दूसरी नदी का नहीं हो सकता। 'महामंडल' लोगों के एक ही समूह (सभा) का नाम है, इस नाम से कोई दूसरा समूह सूचित नहीं होता। इसी प्रकार 'हितकारिणी' कहने से एक अकेले समूह (व्यक्ति) का बोध होता है। इसलिए राम, काशी, गंगा, महामंडल, हितकारिणी व्यक्तिवाचक संज्ञाएँ हैं।

७९—जिस संज्ञा से संपूर्ण पदार्थों वा उनके समूहों का बोध होता है, उसे **जातिवाचक** संज्ञा कहते हैं; जैसे, मनुष्य, घर, पहाड़, नदी, सभा।

हिमालय, विन्ध्याचल, नीलगिरि और आबू एक दूसरे से भिन्न हैं, क्योंकि वे अलग अलग व्यक्ति हैं; परंतु वे एक मुख्य धर्म में समान हैं, अर्थात् वे धरती के बहुत ऊँचे भाग हैं। इस सधर्मता के कारण

उनकी गिनती एक ही जाति में होती है और इस जाति का नाम 'पहाड़' है। 'हिमालय' कहने से (इस नाम के) केवल एक ही पहाड़ का बोध होता है; पर 'पहाड़' कहने से हिमालय, नीलगिरि, विंध्याचल, आबू और इस जाति के दूसरे सब पदार्थ सूचित होते हैं। इसलिए 'पहाड़' जातिवाचक संज्ञा है। इसी प्रकार गंगा, यमुना, सिंध, ब्रह्मपुत्र और इस जाति के दूसरे सब व्यक्तियों के लिए 'नदी' नाम का प्रयोग किया जाता है; इसलिए 'नदी' शब्द जातिवाचक संज्ञा है। लोगों के समूह का नाम 'सभा' है। ऐसे समूह कई हैं; जैसे, 'नागरी-प्रचारिणी', 'कान्यकुब्ज', 'महाजन', 'हितकारिणी'। इन सब समूहों को सूचित करने के लिए 'सभा' शब्द का प्रयोग होता है, इसलिए 'सभा' जातिवाचक संज्ञा है।

८०—जिस संज्ञा से पदार्थ में पाये जानेवाले किसी धर्म वा व्यापार का बोध होता है, उसे **भाववाचक** संज्ञा कहते हैं; जैसे, लम्बाई, चतुराई, बुढ़ापा, नम्रता, मिठास, समझ, चाल।

प्रत्येक पदार्थ में कोई न कोई धर्म होता है। पानी में शीतलता, आग में उष्णता, सोने में भारीपन, मनुष्य में विवेक और पशु में अविवेक रहता है। पदार्थ मानों कुछ विशेष धर्मों के मेल से बनी हुई एक मूर्त्ति है। कोई कोई धर्म एक से अधिक पदार्थों में पाये जाते हैं; जैसे, लंबाई, चौड़ाई, मुटाई, वजन, आकार। चाल, लेन-देन, आदि व्यापारों के नाम हैं।

८१—भाववाचक संज्ञाएँ बहुधा तीन प्रकार के शब्दों से बनाई जाती हैं।

(क) जातिवाचक संज्ञा से—जैसे, बुढ़ापा, लड़कपन, मित्रता, दासत्व, पंडिताई, राज्य।

(ख) विशेषण से—जैसे, गरमी, सरदी, कठोरता, मिठास, बड़प्पन, चतुराई, धैर्य।

(ग) क्रिया से—जैसे, घबराहट, सजावट, चढ़ाई, बहाव, मार, दौड़, चलन।

८२—जब व्यक्ति-वाचक संज्ञा का प्रयोग एक ही नाम के अनेक व्यक्तियों का बोध कराने के लिए अथवा किसी व्यक्ति का असाधारण धर्म सूचित करने के लिए किया जाता है, तब व्यक्तिवाचक संज्ञा जातिवाचक हो जाती है; जैसे, "कहु रावण, रावण जग केते।" "राम तीन हैं।" "यशोदा हमारे घर की लक्ष्मी है।"

८३—कुछ जातिवाचक संज्ञाओं का प्रयोग व्यक्तिवाचक संज्ञाओं के समान होता है; जैसे, पुरी = जगन्नाथ, देवी = दुर्गा, दाऊ = बलदेव, संवत् = विक्रमी संवत्।

८४—कभी कभी भाववाचक संज्ञा का प्रयोग जातिवाचक संज्ञा के समान होता है; जैसे, "उसके आगे सब रूपवती स्त्रियाँ **निरादर** हैं।" इस वाक्य में "निरादर" शब्द से "निरादर योग्य स्त्री" का बोध होता है। " ये सब कैसे अच्छे **पहिरावे** हैं।" यहाँ "पहिरावे" का अर्थ "पहिनने के वस्त्र" है।

संज्ञा के स्थान में आनेवाले शब्द

८५—सर्वनाम का उपयोग संज्ञा के स्थान में होता है; जैसे, मैं (सारथी) रास खींचता हूँ। यह (शकुंतला) वन में पड़ी मिली थी।

८६—विशेषण कभी कभी संज्ञा के स्थान में आता है; जैसे, "इसके **बड़ों** का यह संकल्प है।" "**छोटे** बड़े न ह्वै सकैं।"

८७—कोई कोई क्रिया-विशेषण संज्ञाओं के समान उपयोग में आते हैं; जैसे, "जिसका **भीतर-बाहर** एक सा हो।" "**हाँ** में **हाँ** मिलाना।" "**यहाँ** की भूमि अच्छी है।"

८८—कभी कभी विस्मयादिबोधक शब्द संज्ञा के समान प्रयुक्त होता है; जैसे, "वहाँ **हाय हाय** मची है।" "उनकी बड़ी **वाह वाह** हुई।"

८९—कोई शब्द वा अक्षर केवल उसी शब्द वा अक्षर के अर्थ में संज्ञा के समान उपयोग में आ सकता है; जैसे, "**मैं**" सर्वनाम है। तुम्हारे लेख में कई बार "**फिर**" आया है। "**का**" में "**आ**" की मात्रा मिली है। "**क्ष**" संयुक्त अक्षर है।

दूसरा अध्याय

सर्वनाम

९०—सर्वनाम उस विकारी शब्द को कहते हैं जो प्रसंग के अनुसार किसी संज्ञा के बदले उपयोग में आता है; जैसे, मैं (बोलनेवाला), तू (सुननेवाला), यह (निकटवर्ती वस्तु), वह (दूरवर्ती वस्तु), इत्यादि।

९१—हिंदी में सब मिलाकर ११ सर्वनाम हैं—मैं, तू, आप, यह, वह, सो, जो, कोई, कुछ, कौन, क्या।

९२—प्रयोग के अनुसार सर्वनामों के छः भेद हैं—

(१) पुरुषवाचक—मैं, तू, आप (आदरसूचक)।

(२) निजवाचक—आप ।

(३) निश्चयवाचक—यह, वह, सो ।

(४) संबंधवाचक—जो ।

(५) प्रश्नवाचक—कौन, क्या ।

(६) अनिश्चयवाचक—कोई, कुछ ।

९३—वक्ता अथवा लेखक की दृष्टि से संपूर्ण सृष्टि के तीन भाग किये जाते हैं—पहला—स्वयं वक्ता वा लेखक, दूसरा—श्रोता किंवा पाठक, और तीसरा—कथाविषय अर्थात् वक्ता और श्रोता को छोड़कर और सब। सृष्टि के इन तीनों रूपों को व्याकरण में **पुरुष** कहते हैं और ये क्रमशः उत्तम, मध्यम और अन्यपुरुष कहलाते हैं। उत्तमपुरुष "मैं" और मध्यमपुरुष "तू" को छोड़कर शेष सर्वनाम और सब संज्ञाएँ अन्यपुरुष में आती हैं।

९४—सर्वनामों के तीनों पुरुषों के उदाहरण ये हैं—उत्तमपुरुष—मैं, मध्यमपुरुष—तू, आप (आदरसूचक), अन्य-पुरुष—यह, वह, आप (आदरसूचक), सो, जो, कौन, क्या, कोई, कुछ। सर्व-पुरुष-वाचक—आप (निजवाचक)।

९५—**मैं**—उत्तमपुरुष (एकवचन)।

(अ) जब वक्ता या लेखक केवल अपने ही संबंध में कुछ विधान करता है तब वह इस सर्वनाम का प्रयोग करता है।

जैसे, "भाषा-बद्ध करब मैं सोई।" "जो मैं ही कृतकार्य नहीं तो फिर और कौन हो सकता है?"

(आ) अपने से बड़े लोगों के साथ बोलने में अथवा देवता से प्रार्थना करने में; जैसे, "सारथी—अब मैंने भी तपोवन के चिह्न देखे।" "ह०—पितः, मैं सावधान हूँ।"

(इ) स्त्री अपने लिए बहुधा "मैं" का ही प्रयोग करती है; जैसे, "शकुंतला—मैं सच्ची क्या कहूँ!" "रानी—अरी! आज मैंने ऐसे बुरे बुरे सपने देखे हैं कि जब से सोके उठी हूँ, कलेजा काँप रहा है।"

९६—हम—उत्तमपुरुष (बहुवचन)।

'लड़के' शब्द एक से अधिक लड़कों का सूचक है; परंतु 'हम' शब्द एक से अधिक मैं (बोलनेवालों) का सूचक नहीं है। ऐसी अवस्था में "हम" का अर्थ यही है कि वक्ता अपने साथियों की ओर से प्रतिनिधि होकर अपने तथा अपने साथियों के विचार एक-साथ प्रकट करता है।

(अ) संपादक और ग्रंथकार लोग अपने लिए बहुधा उत्तमपुरुष बहुवचन का प्रयोग करते हैं; जैसे, "हमने एक ही बात को दो दो तीन तीन तरह से लिखा है।" "हम पहले भाग के आरंभ में लिख आये हैं।"

(आ) बड़े बड़े अधिकारी और राजा, महाराजा; जैसे, "इसलिए अब **हम** इश्तहार देते हैं।" "नारद—यही तो **हम** भी कहते हैं।" "दुष्यंत—तुम्हारे देखने ही से **हमारा** सत्कार होगया।"

(इ) अपने कुटुंब, देश अथवा मनुष्य-जाति के संबंध में; जैसे, "**हम** वनवासियों ने ऐसे भूषण आगे कभी न देखे थे।" "हवा के विना **हम** पल भर भी नहीं जी सकते।"

(ई) एक मनुष्य भी अपने संबंध में 'मैं' के बदले 'हम' का प्रयोग करता है; जैसे, "**हम** गाँव को जाते हैं।" "**हमने** काम कर लिया।"

९७—"तू"—मध्यमपुरुष (एकवचन)।

"तू" शब्द से निरादर वा हलकापन प्रकट होता है; इसलिए हिंदी में बहुधा एक व्यक्ति के लिए भी "तुम" का प्रयोग करते हैं। "तू" का प्रयोग प्रायः नीचे लिखे अर्थों में होता है—

(अ) ईश्वर के लिए; जैसे, "देव, **तू** दयालु, दीन हौं, **तू** दानी, हौं भिखारी।" "दीनबंधु, (**तू**) मुझ डूबते हुए को बचा।"

(आ) अवस्था और अधिकार में अपने से छोटे के लिए (परिचय में); जैसे, "रानी—मालती, यह रक्षाबंधन **तू** सम्हाल के अपने पास रख।" "दुष्यंत—(द्वारपाल से) पर्वतायन, **तू** अपने काम में असावधानी मत करियो।" "एक तपस्विनी—अरे हठीले बालक, **तू** इस वन के पशुओं को क्यों सताता है?"

(इ) परम मित्र के लिए; जैसे, "अनसूया—सखी, **तू** क्या कहती है?" "दुष्यंत—सखा, **तुझसे** भी माता पुत्र कहकर बोली हैं।"

(ई) तिरस्कार अथवा क्रोध में किसी से; जैसे, "**तू** मेरे सामने से भाग जा, मैं **तुझे** क्या मारूँ!" "विश्वामित्र—बोल, अभी **तैंने** मुझे पहचाना कि नहीं!"

९८—**तुम**—मध्यमपुरुष (बहुवचन)।

यद्यपि 'हम' के समान 'तुम' बहुवचन है, तथापि शिष्टाचार के अनुरोध से इसका प्रयोग एक ही मनुष्य से बोलने में होता है।

(अ) तिरस्कार और क्रोध को छोड़ कर शेष अर्थों में "तू" के बदले बहुधा "तुम" का उपयोग होता है; जैसे, "दुष्यंत—हे रैवतक, **तुम** सेनापति को बुलाओ।" उपाध्याय—पुत्री, कहो, **तुम** कौन कौन सेवा करोगी?"

९९—**वह**—अन्यपुरुष (एकवचन)।

(यह, जो, कोई, कौन इत्यादि सब सर्वनाम अन्यपुरुष हैं। यहाँ अन्यपुरुष के उदाहरण के लिए निश्चय-वाचक 'वह' लिया गया है।)

'वह' का प्रयोग नीचे लिखे अर्थों में होता है—

(अ) किसी एक प्राणी, पदार्थ वा धर्म के विषय में बोलने के लिए; जैसे, "नारद—निस्संदेह हरिश्चंद्र महाशय है। **उसके** आशय बहुत उदार हैं।" "जैसी दुर्दशा **उसको** हुई, वह सबको विदित है।"

(आ) बड़े दरजे के आदमी के विषय में तिरस्कार दिखाने के लिए; जैसे, "**वह** (श्रीकृष्ण) तो गँवार ग्वाल है।"

"इंद्र—राजा हरिश्चंद्र का प्रसंग निकला था; सो उन्होंने **उसकी** बड़ी स्तुति की।"

१००—**वे**—अन्यपुरुष (बहुवचन)।

कोई कोई इसे "वह" लिखते हैं। पर बहुवचन का शुद्ध रूप "वे" ही है, "वह" नहीं।

(अ) एक से अधिक प्राणियों, पदार्थों वा धर्मों के विषय में बोलने के लिए "वे" आता है; जैसे, "लड़की तो रघुवंशियों के भी होती है; पर **वे** जिलाते कदापि नहीं।" "**वे** ऐसी बातें हैं।"

(आ) एक ही व्यक्ति के विषय में आदर प्रकट करने के लिए; जैसे "**वे** (कालिदास) असामान्य वैयाकरण थे।" "जो बातें मुनि के पीछे हुई, सो **उनसे** किसने कह दीं ?"

१०१—**आप** ('तुम' वा 'वे' के बदले)—मध्यम वा अन्यपुरुष (बहुवचन)।

यह पुरुषवाचक "आप" प्रयोग में निजवाचक "आप" से भिन्न है। इसका प्रयोग मध्यम और अन्यपुरुष बहुवचन में आदर के लिए होता है। 'आप' के साथ क्रिया सदा अन्य-पुरुष बहुवचन में आती है।

(अ) अपने से बड़े दरजेवाले मनुष्य के लिए "तुम" के बदले "आप" का प्रयोग शिष्ट और आवश्यक समझा जाता है; जैसे, "सखी—भला, **आपने** इसकी शांति का भी

कुछ उपाय किया है ?" "तपस्वी—हे पुरुकुलदीपक, **आपको** यही उचित है।"

(आ) बराबरीवाले और अपने से कुछ छोटे दरजे के मनुष्य के लिए भी "आप" कहने की प्रथा है; जैसे, "इंद्र—भला, **आप** उदार वा महाशय किसे कहते हैं ?" "जब **आप** पूरी बात ही न सुनें, तो मैं क्या जवाब दूँ।"

(इ) अन्यपुरुष में आदर के लिए "वे" के बदले कभी कभी "आप" आता है। उदा०—"श्रीमान् राजा कीर्ति-शाह बहादुर का देहांत होगया। अभी **आपकी** उम्र केवल उन्तालीस वर्ष की थी।"

१०२—आप—(निजवाचक)

प्रयोग में निजवाचक "आप" पुरुषवाचक (आदरसूचक) "आप" से भिन्न है। पुरुषवाचक 'आप' एक का वाचक होकर भी नित्य बहुवचन में आता है; पर निजवाचक "आप" एक ही रूप से दोनों वचनों में आता है। पुरुषवाचक "आप" केवल मध्यम और अन्यपुरुष में आता है; परंतु निजवाचक "आप" का प्रयोग तीनों पुरुषों में होता है। आदरसूचक "आप" वाक्य में अकेला आता है; किंतु निजवाचक "आप" दूसरे सर्वनामों के संबंध से आता है। "आप" के दोनों प्रयोगों में रूपांतर का भी भेद है। (अं०—२७०)।

निजवाचक "आप" का प्रयोग आगे लिखे अर्थों में होता है—

(अ) किसी संज्ञा या सर्वनाम के अवधारण के लिए; जैसे, "मैं **आप** वहीं से आया हूँ।" "बनते कभी हम **आप** योगी।"

(आ) दूसरे व्यक्ति के निराकरण के लिए; जैसे—"श्रीकृष्णजी ने ब्राह्मण को बिदा किया और **आप** चलने का विचार करने लगे।" "वह **अपने** को सुधार रहा है।"

(इ) सर्वसाधारण के अर्थ में भी "आप" आता है; जैसे, "**आप** भला तो जग भला।" "**अपने** से बड़े का आदर करना उचित है।"

(ई) "आप" के बदले वा उसके साथ बहुधा "खुद" (उर्दू), "स्वयं" वा "स्वतः" (संस्कृत) का प्रयोग होता है। स्वयं, स्वतः और खुद हिंदी में अव्यय हैं और इनका प्रयोग बहुधा क्रियाविशेषण के समान होता है। उदा०—"आप **खुद** वह बात समझ सकते हैं।" "हम आज अपने आपको भी हैं **स्वयं** भूले हुए।" "सुल्तान **स्वतः** वहाँ गये थे।"

(उ) "आप ही", "अपने आप", "आपसे आप" और "आप ही आप" का अर्थ "मन से" वा "स्वभाव से" होता है और इनका प्रयोग क्रियाविशेषण-वाक्यांशों के समान होता है।

१०३—जिस सर्वनाम से वक्ता के पास अथवा दूर की किसी निश्चित वस्तु का बोध होता है, उसे **निश्चयवाचक** सर्वनाम कहते हैं। निश्चयवाचक सर्वनाम तीन हैं—यह, वह, सो।

१०४—**यह**—(एकवचन)।

इसका प्रयोग नीचे लिखे स्थानों में होता है—

(अ) पास की किसी वस्तु के विषय में बोलने के लिए; जैसे, "**यह** किसका पराक्रमी बालक है ?" "**यह** कोई नया नियम नहीं है।"

(आ) पहले कही हुई संज्ञा वा संज्ञा-वाक्यांश के बदले; जैसे, "माधवीलता तो मेरी बहिन है, **इसे** क्यों न सींचती !" "भला, सत्य धर्म पालना क्या हँसी खेल है। **यह** आप ऐसे महात्माओं का ही काम है।"

(इ) पहले कहे हुए वाक्य के स्थान में; जैसे, "सिंह को मार मणि ले कोई जंतु एक अति डरावनी औंड़ी गुफा में गया; **यह** हम सब अपनी आँखों देख आये।" "मुझको आपके कहने का कभी कुछ रंज नहीं होता है। **इसके** सिवाय मुझे इस अवसर पर आपकी कुछ सेवा करनी चाहिए थी।"

(ई) पीछे आनेवाले वाक्य के स्थान में; जैसे—"उन्होंने अब **यह** चाहा कि अधिकारियों को प्रजा ही नियत किया करे।" "मुझे **इससे** बड़ा आनंद है कि भारतेंदुजी की सबसे पहले छेड़ी हुई यह पुस्तक आज पूरी हो गई।"

१०५—**ये**—(बहुवचन)

'ये' 'यह' का बहुवचन है। कोई कोई लेखक बहुवचन में भी 'यह' लिखते हैं; पर शुद्ध शब्द 'ये' है। इसका प्रयोग बहुत्व और आदर के लिए होता है; जैसे, "**ये** वे ही हैं

जिनसे इंद्र और बावन-अवतार उत्पन्न हुए ।" "ये हमारे यहाँ भेज दो ।"

(अ) आदर के लिए "ये" के बदले "आप" का प्रयोग केवल बोलने में होता है और इसके लिए आदर-पात्र की ओर हाथ बढ़ाकर संकेत भी करते हैं।

१०६—**वह**—(एकवचन); **वे**—(बहुवचन) ।

हिंदी में कोई विशेष अन्यपुरुष सर्वनाम न होने के कारण उसके बदले निश्चयवाचक "वह" आता है। इस सर्वनाम के प्रयोग अन्यपुरुष के विवेचन में बता दिये गये हैं। (अं०—९९, १००)। इससे दूर की वस्तु का बोध होता है।

(अ) पहले कही हुई दो वस्तुओं में से पहली के लिए "वह" और पिछली के लिए "यह" आता है; जैसे, "महात्मा और दुरात्मा में इतना भेद है कि **उनके** मन, वचन और कर्म एक रहते हैं, **इनके** भिन्न भिन्न ।"

"कनक कनक तें सौगुनी मादकता अधिकाय ।
वह खाये बौरात है **यह** पाये बौराय ॥"

१०७—**सो**—(दोनों वचन) ।

यह सर्वनाम बहुधा संबंधवाचक सर्वनाम "जो" के साथ आता है और इसका अर्थ संज्ञा के वचन के अनुसार "वह" वा "वे" होता है; जैसे, "जिस बात की चिंता महाराज को है **सो** (वह) कभी न हुई होगी ।" "जिन पौधों को तू सींच चुकी है **सो** (वे) तो इसी ग्रीष्म ऋतु में फूलेंगे ।" "आप

जो न करें **सो** थोड़ा है।" 'सो' की अपेक्षा 'वह' वा 'वे' का प्रचार अधिक है।

(अ) "वह" वा "वे" के समान "सो" अलग वाक्य में नहीं आता और न उसका प्रयोग "जो" के पहले होता है; परंतु कविता में बहुधा इन नियमों का उल्लंघन हो जाता है; जैसे, "सो ताको सागर जहाँ जाकी प्यास बुझाय।" "सो सुनि भयउ भूप उर सोचू।"

१०८—जिस सर्वनाम से किसी विशेष वस्तु का बोध नहीं होता, उसे **अनिश्चयवाचक** सर्वनाम कहते हैं। अनिश्चयवाचक सर्वनाम दो हैं—कोई, कुछ। "कोई" और "कुछ" में साधारण अंतर यह है कि "कोई" पुरुष के लिए और "कुछ" पदार्थ या धर्म के लिए आता है।

१०९—**कोई**—(दोनों वचन)।

इसका प्रयोग एकवचन में बहुधा नीचे लिखे अर्थों में होता है—

(अ) किसी अज्ञात पुरुष या बड़े जंतु के लिए; जैसे, "ऐसा न हो कि **कोई** आ जाय।" "दरवाज़े पर **कोई** खड़ा है।" "नाली में **कोई** बोलता है।"

(आ) बहुत से ज्ञात पुरुषों में से किसी अनिश्चित पुरुष के लिए; जैसे, "है रे! कोई यहाँ!"

"रघुवंशिन महँ जहँ **कोउ** होई।
तेहि समाज अस कहहि न कोई।"

(इ) "कोई" के साथ "जब" और "हर" (विशेषण) आते हैं। "सब कोई" का अर्थ "सब लोग" और "हर कोई" का अर्थ "हर आदमी" होता है। उदा०—सब कोउ कहत राम सुठि साधू।" "यह काम हर कोई नहीं कर सकता।"

(ई) किसी ज्ञात पुरुष को छोड़ दूसरे अज्ञात पुरुष का बोध कराने के लिए "कोई" के साथ "और" या "दूसरा" लगा देते हैं; जैसे, "यह भेद कोई और न जाने।" "कोई दूसरा होता तो मैं उसे न छोड़ता।"

(उ) आदर और बहुत्व के लिए भी "कोई" आता है। पिछले अर्थ में बहुधा "कोई" की द्विरुक्ति होती है; जैसे, "मेरे घर कोई आये हैं।" "कोई कोई पोप के अनुयायियों ही को नहीं देख सकते।"

११०—कुछ—(एकवचन)।

इसका प्रयोग बहुधा विशेषण के समान होता है। जब इसका प्रयोग संज्ञा के बदले में होता है, तब यह नीचे लिखे अर्थों में आता है—

(अ) किसी अज्ञात पदार्थ वा धर्म के लिए; जैसे, "घी में कुछ मिला है।" "मेरे मन में आती है कि इससे कुछ पूछूँ।"

(आ) छोटे जंतु वा पदार्थ के लिए; जैसे, "पानी में कुछ है।"

(इ) किसी ज्ञात पदार्थ वा धर्म को छोड़कर दूसरे अज्ञात पदार्थ वा धर्म का बोध कराने के लिए "कुछ" के साथ "और" आता है; जैसे, "तेरे मन में कुछ और ही है।"

(ई) भिन्नता या विपरीतता सूचित करने के लिए "कुछ का कुछ" आता है; जैसे, "आपने **कुछ का कुछ** समझ लिया।" "जिनसे ये **कुछ के कुछ** होगये।"

(उ) "कुछ" के साथ "सब" और "बहुत" आते हैं। "सब कुछ" का अर्थ "सब पदार्थ वा धर्म" है, और "बहुत कुछ" का अर्थ "बहुत से पदार्थ वा धर्म" अथवा "अधिकता से" है। उदा०—"हम समझते **सब कुछ** हैं।" "यों भी **बहुत कुछ** हो रहेगा।"

१११—**जो**—(दोनों वचन)।

हिंदी में संबंध-वाचक सर्वनाम एक ही है। इसके प्रयोग नीचे लिखे जाते हैं—

(अ) "जो" के साथ "सो" वा "वह" का नित्य संबंध रहता है। "सो" वा "वह" निश्चयवाचक सर्वनाम है; परंतु संबंध-वाचक सर्वनाम के साथ आने पर इसे **नित्य-संबंधी** सर्वनाम कहते हैं। जिस वाक्य में संबंधवाचक सर्वनाम आता है, उसका संबंध एक दूसरे वाक्य से रहता है जिसमें **नित्य-संबंधी** सर्वनाम आता है; जैसे, "**जो** बोलै **सो** घी को जाय।" "**जो** हरिश्चंद्र ने किया, **वह** तो अब कोई भी भारतवासी न करेगा!"

(आ) संबंध-वाचक और नित्य-संबंधी सर्वनाम एक ही संज्ञा के बदले आते हैं। जब संज्ञा का प्रयोग होता है तब वह बहुधा पहले वाक्य में आती है और संबंधवाचक

सर्वनाम दूसरे वाक्य में आता है; जैसे, "राजा भीष्मक का बड़ा बेटा, **जिसका** नाम रुक्म था, झुँझला के बोला।" "यह नारी कौन है **जिसका** रूप वस्त्रों में झलक रहा है।"

(इ) बहुधा संबंध-वाचक और नित्य-संबंधी सर्वनामों में से किसी एक का प्रयोग विशेषण के समान होता है; जैसे, "क्या आप फिर **उस परदे** को डाला चाहते हैं **जो** सत्य ने मेरे सामने से हटाया ?" "**जिस हरिश्चंद्र** ने उदय से अस्त तक की पृथ्वी के लिए धर्म न छोड़ा, **उसका** धर्म आध गज कपड़े के वास्ते मत छुड़ाओ।"

(ई) आदर और बहुत्व के लिए भी "जो" आता है; जैसे, "यह (ये) चारों कवित्त श्री बाबू गोपालचंद्र के बनाये हैं, **जो** कविता में अपना नाम गिरधरदास रखते थे।" "यहाँ तो वे ही बड़े हैं **जो** दूसरे को दोष लगाना पढ़े हैं।"

(उ) कभी कभी संबंध-वाचक वा नित्य-संबंधी सर्वनाम का लोप होता है; जैसे, "हुआ सो हुआ।" "जो पानी पीता है, आपको असीस देता है।" कभी कभी दूसरे वाक्य ही का लोप होता है; जैसे, "जो आज्ञा", "जो हो"।

(ऊ) "जो" के साथ अनिश्चय-वाचक सर्वनाम भी जोड़े जाते हैं। "कोई" और "कुछ" के अर्थों में जो अंतर है, वही "जो कोई" और "जो कुछ" के अर्थों में भी है; जैसे, "**जो कोई** नल को घर में घुसने देगा, जान से हाथ धोयेगा।" "महाराज, **जो कुछ** कहो बहुत समझ बूझकर कहियो।"

११२—प्रश्न करने के लिए जिन सर्वनामों का उपयोग होता है, उन्हें **प्रश्नवाचक सर्वनाम** कहते हैं। ये दो हैं—कौन और क्या।

११३—"कौन" और "क्या" के प्रयोगों में साधारण अंतर वही है जो "कोई" और "कुछ" के प्रयोगों में है। "कौन" प्राणियों के लिए और विशेष कर मनुष्यों के लिए और "क्या" क्षुद्र प्राणी, पदार्थ वा धर्म के लिए आता है; जैसे, "हे महाराज, आप **कौन** हैं?" "यह आशीर्वाद **किसने** दिया?" "तुम **क्या** कर सकते हो?" "**क्या** है?"

११४—"कौन" का प्रयोग नीचे लिखे अर्थों में होता है—

(अ) निर्धारण के अर्थ में "कौन" प्राणी, पदार्थ और धर्म तीनों के लिए आता है; जैसे—

"हरिश्चंद्र—तो हम एक नियम पर बिकेंगे?" "धर्म—वह **कौन**?" "इसमें पाप **कौन** है और पुण्य **कौन** है?" "यह **कौन** है जो मेरे अंचल को नहीं छोड़ता!"

(आ) तिरस्कार के लिए; जैसे, "रोकनेवाली तुम **कौन** हो!" "**कौन** जाने?" "स्वर्ग **कौन** कहे, आपने अपने सत्यबल से ब्रह्म-पद पाया।"

(इ) आश्चर्य अथवा दुःख में; जैसे, "अरे! हमारी बात का यह उत्तर **कौन** देता है?" "अरे! आज मुझे **किसने** लूट लिया।"

११५—"क्या" नीचे लिखे अर्थों में आता है—

(अ) किसी वस्तु का लक्षण जानने के लिए; जैसे, "मनुष्य **क्या** है ?" "आत्मा **क्या** है ?" "धर्म **क्या** है ?"

(आ) किसी वस्तु के लिए तिरस्कार वा अनादर सूचित करने में; जैसे, "**क्या** हुआ जो अब की लड़ाई में हारे।" "भला हम दास लेके **क्या** करेंगे ?" "धन तो **क्या**, इस काम में तन भी लगाना चाहिए !"

(इ) धमकी में; जैसे, "तुम यह **क्या** कहते हो।"

(ई) किसी वस्तु की दशा बताने में; जैसे, "हम कौन थे **क्या** होगये हैं और **क्या** होंगे अभी।"

(उ) दशांतर सूचित करने के लिए "क्या से क्या" आता है; जैसे, "हम आज **क्या** से **क्या** हुए !"

११६—पुरुषवाचक, निजवाचक और निश्चयवाचक सर्व-नामों में अवधारणा के लिए "ही", "हीं" वा "ई" प्रत्यय जोड़ते हैं; जैसे, मैं = मैंही; तू = तूही; हम = हमीं; तुम = तुम्हीं; आप = आपही; वह = वही; सो = सोई; यह = यही; वे = वेही।

११७—किसी किसी सर्वनाम का प्रयोग अव्यय के समान भी होता है; जैसे, "वह स्थान मुझे उदास दिखाई पड़ा **सो** मैं शीघ्र चला आया।" (स० बो०)। "क्या हुआ **जो** अब की लड़ाई में हारे।" (स० बो०)। "आपको सत्संग **कौन** दुर्लभ है"। (क्रि० वि०)। "**क्या** घंटा बज गया ?" (वि० बो०)

११८—"यह", "वह", "सो", "जो" और "कौन" के रूप "इस", "उस", "तिस", "जिस" और "किस" में अंत्य "स" के स्थान में "तना" आदेश करने से परिमाण-वाचक विशेषण और "इ" को "ऐ" तथा "उ" को "वै" करके "सा" आदेश करने से गुणवाचक विशेषण बनते हैं। उदा०—

सर्वनाम	रूप	परिमाणवाचक विशेषण	गुणवाचक विशेषण
यह	इस	इतना	ऐसा
वह	उस	उतना	वैसा
सो	तिस	तितना	तैसा
जो	जिस	जितना	जैसा
कौन	किस	कितना	कैसा

तीसरा अध्याय

विशेषण

११९—जिस विकारी शब्द से संज्ञा की व्याप्ति मर्यादित होती है, उसे **विशेषण** कहते हैं; जैसे, बड़ा, काला, दयालु, भारी, एक, दो, सब।

(क) व्यक्तिवाचक संज्ञा के साथ जो विशेषण आता है, वह उस संज्ञा की व्याप्ति मर्यादित नहीं करता, किंतु समानाधिकरण होता है; जैसे, पतिव्रता सीता, प्रतापी भोज, दयालु ईश्वर। इन उदाहरणों में विशेषण संज्ञा के अर्थ को केवल स्पष्ट करते हैं। "पतिव्रता सीता" वही व्यक्ति है जो 'सीता' है। इसी प्रकार "भोज" और "प्रतापी भोज" एक ही व्यक्ति के नाम हैं। किसी शब्द का अर्थ स्पष्ट करने के लिए जो शब्द आते हैं, वे **समानाधिकरण** कहलाते हैं। ऊपर के वाक्यों में "पतिव्रता", "प्रतापी" और "दयालु" समानाधिकरण विशेषण हैं।

(ख) जातिवाचक संज्ञा के साथ उसका साधारण धर्म सूचित करनेवाला विशेषण समानाधिकरण होता है; जैसे, मूक पशु, अबोध बच्चा, काला कौआ, ठंडी बर्फ। इन उदाहरणों में विशेषणों के कारण संज्ञा की व्यापकता कम नहीं होती।

१२०—विशेषण के योग से जिस संज्ञा की व्याप्ति मर्यादित होती है, उस संज्ञा को **विशेष्य** कहते हैं; जैसे, "ठंढी हवा चली"—इस वाक्य में 'ठंढी' विशेषण और 'हवा' विशेष्य है।

१२१—विशेष्य के साथ विशेषण का प्रयोग दो प्रकार का होता है। एक प्रयोग को विशेष्य-विशेषण और दूसरे को विधेय-विशेषण कहते हैं। विशेष्य-विशेषण विशेष्य के साथ और विधेय-विशेषण क्रिया के साथ आता है; जैसे, "**ऐसी सुडौल** चीज़ कहीं नहीं बन सकती।" "हमें तो संसार **सूना** देख पड़ता है।"

१२२—विशेषण के मुख्य तीन भेद किये जाते हैं—(१) सार्वनामिक, (२) गुणवाचक और (३) संख्यावाचक।

(१) सार्वनामिक विशेषण

१२३—पुरुषवाचक और निजवाचक सर्वनामों को छोड़कर शेष सर्वनामों का प्रयोग विशेषण के समान भी होता है। जब ये शब्द अकेले आते हैं तब सर्वनाम होते हैं और जब इनके साथ संज्ञा आती है, तब ये विशेषण होते हैं; जैसे, "नौकर आया है; वह बाहर खड़ा है।" इस वाक्य में 'वह' सर्वनाम है; क्योंकि वह "नौकर" संज्ञा के बदले आया है। "वह नौकर बाहर खड़ा है"—यहाँ "वह" विशेषण है; क्योंकि "वह" "नौकर" संज्ञा की व्याप्ति मर्यादित करता है; अर्थात् उसका निश्चय बताता है। इसी तरह "किसी को बुलाओ" और "किसी ब्राह्मण को बुलाओ"—इन वाक्यों में "किसी" क्रमशः सर्वनाम और विशेषण है।

१२४—पुरुषवाचक और निजवाचक सर्वनाम (मैं, तू, आप) संज्ञा के साथ आकर उसकी व्याप्ति मर्यादित नहीं करते, किंतु समानाधिकरण होते हैं; जैसे, "मैं मोहनलाल इकरार करता हूँ।" इस वाक्य में "मैं" शब्द विशेषण के समान "मोहनलाल" संज्ञा की व्याप्ति मर्यादित नहीं करता, किंतु यहाँ मोहनलाल शब्द "मैं" के अर्थ को स्पष्ट करने के लिए आया है। इसलिए यहाँ "मैं" और "मोहनलाल" समानाधिकरण शब्द हैं, विशेषण और विशेष्य नहीं हैं। इसी तरह "लड़का

आप आया था"—इस वाक्य में "आप" शब्द विशेषण नहीं है, किंतु "लड़का" का समानाधिकरण शब्द है।

१२५—सार्वनामिक विशेषण व्युत्पत्ति के अनुसार दो प्रकार के होते हैं।

(१) मूल सर्वनाम, जो बिना किसी रूपांतर के संज्ञा के साथ आते हैं; जैसे, यह घर, वह लड़का, कोई नौकर, कुछ काम।

(२) यौगिक सर्वनाम, जो मूल सर्वनामों में प्रत्यय लगाने से बनते हैं और संज्ञा के साथ आते हैं; जैसे, ऐसा आदमी, कैसा घर, उतना काम, जैसा देश, वैसा भेष।

१२६—मूल सार्वनामिक विशेषणों का अर्थ बहुधा सर्वनामों ही के समान होता है; परंतु कहीं कहीं उनमें कुछ विशेषता भी पाई जाती है।

(अ) "वह" "एक" के साथ आकर अनिश्चय-वाचक होता है; जैसे, "**वह एक** मनिहारिन आगई थी।"

(आ) "कौन" और "कोई" प्राणि, पदार्थ वा धर्म के नाम के साथ आते हैं; जैसे, कौन मनुष्य ? कौन जानवर ? कौन कपड़ा ? कौन बात ? कोई मनुष्य, कोई जानवर, कोई कपड़ा, कोई बात। निश्चय के अर्थ में इनके साथ 'सा' प्रत्यय जोड़ा जाता है।

(इ) आश्चर्य में "क्या" प्राणी, पदार्थ या धर्म तीनों नाम के साथ आता है; जैसे, "तुम भी **क्या** आदमी हो !" "यह **क्या** लकड़ी है ?" "**क्या** बात है !"

(ई) "कुछ" संख्या, परिमाण और अनिश्चय का बोधक है। (संख्या और परिमाण के प्रयोग आगे लिखे जायँगे।) अनिश्चय के अर्थ में "कुछ" बहुधा भाववाचक संज्ञाओं के साथ आता है; जैसे, कुछ बात, कुछ डर, कुछ विचार, कुछ उपाय।

१२७—यौगिक सार्वनामिक विशेषणों के साथ जब विशेष्य नहीं रहता, तब उनका प्रयोग बहुधा सर्वनामों के समान होता है; जैसे, "**इतने** में **ऐसा** हुआ", "**जैसा** करोगे **वैसा** पाओगे"। "**जैसे** को **वैसा** मिले"।

(अ) "ऐसा" का प्रयोग कभी कभी "यह" के समान वाक्य के बदले में होता है; जैसे, "**ऐसा** कब हो सकता है कि मुझे भी दोष लगे।"

१२८—यौगिक संबंध-वाचक (सार्वनामिक) विशेषणों के साथ बहुधा उनके नित्य-संबंधी विशेषण आते हैं; जैसे, "**जैसा** देश **वैसा** भेष।" "**जितनी** चादर देखो **उतना** पैर फैलाओ।"

(अ) बहुधा किसी एक विशेषण के विशेष्य का लोप हो जाता है; जैसे, "**जितना** मैंने दान दिया **उतना** तो कभी किसी के ध्यान में न आया होगा।" "**जैसी** बात आप कहते हैं **वैसी** कोई न कहेगा।"

(आ) कभी कभी "जैसा" और "ऐसा" का उपयोग "समान" (संबंधसूचक) के सदृश होता है; जैसे, "प्रवाह

उन्हें तालाव के **जैसा** रूप दे देता है।" "यह आप **ऐसे** महात्माओं का काम है।"

(इ) "जैसा का तैसा"—यह विशेषण-वाक्यांश "पूर्ववत्" के अर्थ में आता है; जैसे, "वे **जैसे के तैसे** बने रहे।"

१२९—यौगिक प्रश्न-वाचक (सार्वनामिक) विशेषण (**कैसा** और **कितना**) बहुधा आश्चर्य के अर्थ में आते हैं; जैसे, "मनुष्य **कितना** धन देगा और याचक **कितना** लेंगे!" "विद्या पाने पर **कैसा** आनंद होता है!"

१३०—परिमाणवाचक सार्वनामिक विशेषण **बहुवचन** में संख्यावाचक होते हैं; जैसे, "**इतने** गुणज्ञ और रसिक लोग एकत्र हैं।" "मेरे **जितने** प्रजाजन हैं उनमें से किसी को अकाल-मृत्यु नहीं आती।"

(अ) "कितने ही" वा "कितने एक" का प्रयोग "कई" के अर्थ में होता है; जैसे, "पृथ्वी के **कितने ही** अंश धीरे धीरे उठते हैं।" "**कितने एक** दिन पीछे फिर जरासंध उतनी ही सेना ले चढ़ आया।"

१३१—यौगिक सार्वनामिक विशेषण कभी कभी क्रिया-विशेषण भी होते हैं; जैसे, "तू मरने से **इतना** क्यों डरता है?" वैदिक लोग **कितना** ही अच्छा लिखें तो भी उनके अक्षर अच्छे नहीं होते।" "मुनि **ऐसे** क्रोधी हैं कि बिना दक्षिणा मिले शाप देने को तैयार होंगे।" "मृग-छौने **कैसे** निधड़क चर रहे हैं।"

१३२—"निज" और "पराया" भी सार्वनामिक विशेषण हैं; क्योंकि इनका भी प्रयोग बहुधा विशेषण के समान होता है। "निज" का अर्थ "अपना" और "पराया" का अर्थ "दूसरे का" है; जैसे, निज देश, निज भाषा, पराया घर, पराया माल।

(२) गुणवाचक विशेषण

१३३—गुणवाचक विशेषणों की संख्या और सब विशेषणों की अपेक्षा अधिक रहती है। इनके कुछ मुख्य अर्थ नीचे दिये जाते हैं—

काल—नया, पुराना, भूत, वर्त्तमान, भविष्य, मौसिमी, आगामी।
स्थान—लंबा, चौड़ा, ऊँचा, नीचा, सीधा, सँकरा, भीतरी, बाहरी।
आकार—गोल, चौकोर, सुडौल, समान, पोला, सुंदर, नुकीला।
दशा—दुबला, पतला, मोटा, पिघला, गाढ़ा, पीला, सूखा।
गुण—भला, बुरा, उचित, अनुचित, सच, झूठ, पापी।

१३४—गुणवाचक विशेषणों के साथ हीनता के अर्थ में "सा" प्रत्यय जोड़ा जाता है; जैसे, "**बड़ा सा** पेड़", "**ऊँची सी** दीवार।" "यह चाँदी **खोटी सी** दिखाई देती है।" "उसका सिर **भारी सा** हो गया।"

१३५—संज्ञाओं में "संबंधी" और "रूपी" शब्द जोड़ने से विशेषण बनते हैं; जैसे, "**घर-संबंधी** काम," "**तृष्णा-रूपी** नदी"।

१३६—"समान" (सदृश), "तुल्य" (बराबर) और "योग्य" (लायक़) का प्रयोग कभी कभी संबंध-सूचक के समान होता है; जैसे, "उसका ऐन घड़े के **समान** बड़ा था।" "लड़का आदमी के **बराबर** दौड़ा।" "मेरे **योग्य** काम-काज लिखिएगा।"

१३७—गुणवाचक विशेषण के बदले बहुधा संज्ञा का संबंध कारक आता है; जैसे "**घरू** झगड़ा"=घर का झगड़ा, "**जंगली** जानवर"=जंगल का जानवर।

१३८—जब गुणवाचक विशेषणों का विशेष्य लुप्त रहता है, तब उनका प्रयोग संज्ञाओं के समान होता है; जैसे, "**बड़ों ने** सच कहा है।" "**दीनों को** मत सताओ।" "**सहज में**।"

(३) संख्यावाचक विशेषण

१३९—संख्यावाचक विशेषण के मुख्य तीन भेद हैं—(१) निश्चित संख्यावाचक, (२) अनिश्चित संख्यावाचक और (३) परिमाण-बोधक।

(१) निश्चित संख्यावाचक विशेषण

१४०—निश्चित संख्यावाचक विशेषणों से वस्तुओं की निश्चित संख्या का बोध होता है; जैसे, **एक** लड़का, **पच्चीस** रुपये, **दसवाँ** भाग, **दूना** मोल, **पाँचों** इंद्रियाँ, **हर** आदमी।

१४१—निश्चित संख्यावाचक विशेषणों के पाँच भेद हैं—(१) गणनावाचक, (२) क्रमवाचक, (३) आवृत्तिवाचक, (४) समुदाय-वाचक, और (५) प्रत्येक-बोधक।

१४२—**गणनावाचक** विशेषणों के दो भेद हैं—
(अ) पूर्णांक-बोधक; जैसे, एक, दो, चार, सौ, हज़ार।
(आ) अपूर्णांक-बोधक; जैसे, पाव, आधा, पौन, सवा।

(अ) पूर्णांकबोधक विशेषण

१४३—पूर्णांक-बोधक विशेषण दो प्रकार से लिखे जाते हैं—(१) शब्दों में और (२) अंकों में। बड़ी बड़ी संख्याएँ अंकों में लिखी जाती हैं; परंतु छोटी छोटी संख्याएँ और अनिश्चित बड़ी संख्याएँ बहुधा शब्दों में लिखी जाती हैं। तिथि और संवत् को अंकों ही में लिखते हैं।

उदा०—"सन् १६०० तक तोले भर सोने की दस तोले चाँदी मिलती थी। सन् १७०० में अर्थात् सौ बरस बाद तोले भर सोने की चौदह तोले मिलने लगी।"

१४४—दहाई की संख्याओं में एक से लेकर आठ तक अंकों का उच्चारण कुछ रूपांतर के साथ दहाइयों के पहले होता है; जैसे, "चौ-बीस", "पैं-तीस", "सैं-तालीस।"

१४५—बीस से लेकर अस्सी तक प्रत्येक दहाई के पहले की संख्या सूचित करने के लिए उस दहाई के नाम के पहले "उन्" शब्द का उपयोग होता है; जैसे, "उन्तीस," "उन्-सठ।" "नवासी" और "निन्नानवे" में क्रमश: "नव" और "निन्ना" जोड़े जाते हैं।

१४६—सौ से ऊपर की संख्या जताने के लिए एक से अधिक शब्दों का उपयोग किया जाता है; जैसे, १२५ = एक सौ पच्चीस, २७५ = दो सौ पचहत्तर।

(आ) अपूर्णांक-बोधक विशेषण

१४७—अपूर्णांक-बोधक विशेषण से पूर्ण संख्या के किसी भाग का बोध होता है; जैसे, पाव = चौथाई भाग; पौन = तीन भाग; सवा = एक पूर्णांक और चौथाई भाग; अढ़ाई = दो पूर्णांक और आधा।

(अ) एक से अधिक संख्याओं के साथ पाव और पौन सूचित करने के लिए पूर्णांक-बोधक शब्द के पहले क्रमशः "सवा" और "पौने" शब्दों का प्रयोग किया जाता है; जैसे, "सवा दो" = $२\frac{१}{४}$, "पौने तीन" = $२\frac{३}{४}$।

(आ) तीन और उससे ऊपर की संख्याओं में आधे की अधिकता सूचित करने के लिए "साढ़े" का उपयोग होता है; जैसे, "साढ़े चार" = $४\frac{१}{२}$; "साढ़े दस" = $१०\frac{१}{२}$।

१४८—कभी कभी अपूर्णांक-बोधक संख्या आनों के हिसाब से भी सूचित की जाती है; जैसे, "इस साल **चौदह आने** फसल हुई।" "इस व्यापार में मेरा **चार आने** हिस्सा है।"

१४९—**गणनावाचक** विशेषणों के प्रयोग में नीचे लिखी विशेषताएँ हैं—

(अ) पूर्णांक-बोधक विशेषण के साथ "एक" लगाने से "लगभग" का अर्थ पाया जाता है; जैसे, "**दस एक** आदमी", "**चालीस एक** गाएँ।"

(आ) एक के अनिश्चय के लिए उसके साथ आद या आध लगाते हैं; जैसे, एक-आद टोपी, एक-आध कवित्त। एक और आद (आध) में बहुधा संधि भी हो जाती है; जैसे, एकाद, एकाध।

(इ) अनिश्चय के लिए कोई भी दो पूर्णांक-बोधक विशेषण साथ साथ आते हैं; जैसे, "दो-चार दिन में", "दस-बीस रुपये", सौ-दो सौ आदमी।" डेढ़-दो", "अढ़ाई-तीन" भी बोलते हैं।

(ई) "बीस", "पचास", "सैकड़ा", "हजार", "लाख" और "करोड़" में ओं जोड़ने से अनिश्चय का बोध होता है; जैसे, "बीसों आदमी", "पचासों घर," "सैकड़ों रुपये", "हजारों बरस", "करोड़ों पंडित"।

१५०—क्रमवाचक विशेषण से किसी वस्तु की क्रमानुसार गणना का बोध होता है; जैसे, पहला, दूसरा, पाँचवाँ, बीसवाँ।

(अ) क्रम-वाचक विशेषण पूर्णांक-बोधक विशेषणों से बनते हैं। पहले चार क्रम-वाचक विशेषण नियम-रहित हैं; जैसे—

एक = पहला	तीन = तीसरा
दो = दूसरा	चार = चौथा

(आ) पाँच से लेकर आगे शब्दों में "वाँ" जोड़ने से क्रमवाचक विशेषण बनते हैं; जैसे—

पाँच = पाँचवाँ	दस = दसवाँ
छः = (छठवाँ) छठा	पंद्रह = पंद्रहवाँ
आठ = आठवाँ	पचास = पचासवाँ

(इ) सौ से ऊपर की संख्याओं में पिछले शब्द के अंत में वाँ लगाते हैं; जैसे, एक सौ पाँचवाँ, दो सौ आठवाँ।

१५१—**आवृत्तिवाचक**—विशेषण से जाना जाता है कि उसके विशेष्य का वाच्य पदार्थ कै गुना है; जैसे, दुगुना, चौगुना, दसगुना, सौगुना।

(अ) पूर्णांक-बोधक विशेषण के आगे "गुना" शब्द लगाने से आवृत्तिवाचक विशेषण बनते हैं। "गुना" शब्द लगाने के पहले दो से लेकर आठ तक संख्याओं के शब्दों में आद्य स्वर का कुछ विकार होता है; जैसे—

दो = दुगुना वा दूना	छः = छगुना
तीन = तिगुना	सात = सतगुना
चार = चौगुना	आठ = अठगुना
पाँच = पँचगुना	नौ = नौगुना

१५२—**समुदाय-वाचक** विशेषणों से किसी पूर्णांक-बोधक संख्या के समुदाय का बोध होता है; जैसे, **दोनों** हाथ, **चारों** पाँव, **आठों** लड़के, **चालीसों** चोर।

(अ) पूर्णांक-बोधक विशेषणों के आगे 'ओं' जोड़ने से समुदाय-वाचक विशेषण बनते हैं; जैसे, चार—चारों, दस—दसों, सोलह—सोलहों। छः का रूप 'छओं' होता है।

(आ) "दो" से "दोनों" बनता है। 'एक' का समुदाय-वाचक रूप "अकेला" है। "दोनों" का प्रयोग बहुधा सर्वनाम के समान होता है; जैसे, "दुविधा में दोनों गये माया मिली न राम।" "अकेला" कभी कभी क्रिया-विशेषण के समान आता है; जैसे, "विपिन अकेलि फिरहु केहि हेतू।"

(इ) कभी कभी समुदायवाचक विशेषण की द्विरुक्ति भी होती है; जैसे, "पाँचों के पाँचों आदमी चले गये।" "दोनों के दोनों लड़के मूर्ख निकले।"

१५३—**प्रत्येक-बोधक** विशेषण से कई वस्तुओं में से प्रत्येक का बोध होता है; जैसे, "हर घड़ी", "हर एक आदमी," "प्रति जन्म", "प्रत्येक बालक", "हर आठवें दिन।"

[सूचना—हर और प्रति का उपयोग बहुधा उपसर्गों के समान होता है।]

(अ) गणना-वाचक विशेषणों की द्विरुक्ति से भी यही अर्थ निकलता है; जैसे, "एक-एक लड़के को आधा-आधा फल मिला।" "दवा दो-दो घंटे के बाद दी जाय।"

(२) अनिश्चित संख्यावाचक विशेषण

१५४—जिस संख्या-वाचक विशेषण से किसी निश्चित संख्या का बोध नहीं होता, उसे अनिश्चित संख्यावाचक विशेषण कहते हैं; जैसे, एक, दूसरा (अन्य, और), सब (सर्व, सकल, समस्त, कुल), बहुत (अनेक, कई, नाना), अधिक (ज्यादा), कम, कुछ, आदि (इत्यादि, वगैरह), अमुक (फलाना), कै।

अनिश्चित संख्या के अर्थ में इनका प्रयोग बहुवचन में होता है। और और विशेषणों के समान ये विशेषण भी संज्ञा वा सर्वनाम के समान उपयोग में आते हैं।

(१) "एक" पूर्णांक-बोधक विशेषण है; परंतु इसका प्रयोग बहुधा अनिश्चय के लिए होता है।

(अ) "एक" से कभी कभी "कोई" का अर्थ पाया जाता है; जैसे, "**एक** दिन ऐसा हुआ।" "हमने **एक** बात सुनी है।"

(आ) जब "एक" (विशेष्य के बिना) संज्ञा के समान आता है, तब उसका प्रयोग कभी कभी बहुवचन में होता है; और दूसरे वाक्य में उसकी द्विरुक्ति भी होती है; जैसे, "**इक** प्रविशहिं, **इक** निर्गमहिं।"

(इ) "एक" के साथ "सा" प्रत्यय लगाने से "समान" का अर्थ पाया जाता है; जैसे, "दोनों का रूप **एकसा** है।"

(२) "दूसरा" "दो" का क्रमवाचक विशेषण है; पर यह प्रकृत प्राणी या पदार्थ से भिन्न के अर्थ में आता है; जैसे, "यह **दूसरी** बात है।" "द्वार **दूसरे** दीनता उचित न तुलसी तोर।"

(अ) कभी कभी "दूसरा" "एक" के साथ विचित्रता (तुलना) के अर्थ में सर्वनाम की नाईं आता है; जैसे, "**एक** जलता मांस मारे तृष्णा के मुँह में रख लेता है और **दूसरा** उसी को फिर झट से खा जाता है!"

(आ) "एक-दूसरा" पहले कही हुई दो वस्तुओं का क्रमानुसार निश्चय सूचित करता है; जैसे, "प्रतिष्ठा के लिए दो विद्याएँ हैं, **एक** शस्त्र-विद्या और **दूसरी** शास्त्र-विद्या।"

(इ) "एक-दूसरा" यौगिक शब्द है और इसका प्रयोग "आपस" के अर्थ में होता है। यह बहुधा सर्वनाम के समान (संज्ञा के बदले में) आता है; जैसे, "लड़के **एक-दूसरे से** लड़ते हैं।"

(ई) "और" कभी कभी "अधिक संख्या" के अर्थ में भी आता है; जैसे, "मैं **और** आम लूँगा।"

(उ) "और का और" विशेषण-वाक्यांश है और इसका अर्थ 'भिन्न' होता है; जैसे, "**और का और** काम।"

(३) "सब" पूरी संख्या सूचित करता है, परंतु अनिश्चित रूप से; जैसे, "**सब** लड़के", "**सब** कपड़े", "**सब** भाँति"।

(अ) सर्वनाम-रूप में इसका प्रयोग "संपूर्ण प्राणी, पदार्थ वा धर्म" के अर्थ में होता है; जैसे, "**सब** यही बात कहते हैं।" "**सब** के दाता राम।" "आत्मा **सब** में व्याप्त है।" "मैं **सब** जानता हूँ।"

(आ) "सब का सब" विशेषण वाक्यांश है; और इसका प्रयोग "समस्तता" के अर्थ में होता है; जैसे, "**सब के सब** लड़के लौट आये।"

(४) "बहुत" "थोड़े" का उलटा है; जैसे, "मुसलमान थे **बहुत** और हिंदू थे **थोड़े**।"

(अ) "अनेक" (अन + एक) "एक" का उलटा है। इसका प्रयोग कम अनिश्चित संख्या के लिए होता है। "अनेक" और "कई" प्राय: समानार्थी हैं। उदा०—"**अनेक** जन्म", "**कई** रंग।" "अनेक" में विचित्रता के अर्थ में बहुधा "ओं" जोड़ देते हैं; जैसे, "**अनेकों** मनुष्य।"

(आ) "कई" के साथ बहुधा "एक" आता है। "कई एक" का अर्थ प्राय: "कई प्रकार का" है और उसका पर्याय-वाची "नाना" है; जैसे, "**कई एक** ब्राह्मण", "**नाना** वृक्ष"।

(५) "अधिक", और "ज्यादा" तुलना में आते हैं; जैसे, "**अधिक** रुपये", "**ज्यादा** दिन"।

(६) "कम" "ज्यादा" का उलटा है और इसी के समान तुलना में आता है; जैसे, "हम यह कपड़ा **कम** दामों में लाये थे।"

(७) "कुछ" अनिश्चयवाचक सर्वनाम होने के सिवा अनिश्चित संख्या का भी द्योतक है। यह "बहुत" का उलटा है; जैसे, "**कुछ** लोग", "**कुछ** फल", "**कुछ** तारे"।

(८) "आदि" का अर्थ "और ऐसे ही दूसरे" है। इसका प्रयोग सर्वनाम और विशेषण दोनों के समान होता है; जैसे, "इस उपाय से उसे टोपी, रूमाल **आदि** का लाभ हो जाता था।" "विद्यानुरागिता, उपकारप्रियता **आदि** गुण जिसमें सहज हों।" "वगैरह" उर्दू (अरबी) शब्द है। हिंदी में इसका प्रयोग कम होता है।

(९) "अमुक" का प्रयोग "कोई एक" के अर्थ में होता है; जैसे, "आदमी यह नहीं कहते कि **अमुक** बात, **अमुक** राय या **अमुक** सम्मति निर्दोष है।" "अमुक" का पर्याय-वाची "फलाना" (उर्दू—फ़लाँ) है।

(१०) "कै" का अर्थ प्रश्नवाचक विशेषण "कितने" के समान है। इसका प्रयोग सर्वनाम की नाईं क्वचित् होता है; जैस, "**कै** लड़के ?" "**कै** आम ?"

(३) परिमाण-बोधक विशेषण

१५५—परिमाण-बोधक विशेषणों से किसी वस्तु की नाप या तौल का बोध होता है; जैसे, और, सब, सारा, समूचा, अधिक (ज्यादा), बहुत, बहुतेरा, कुछ (अल्प, किंचित्, जरा), कम, थोड़ा, पूरा, अधूरा, यथेष्ट।

(अ) इन शब्दों से केवल अनिश्चित परिमाण का बोध होता है; जैसे, "**और** घी लाओ", "**सब** धान", "**सारा** कुटुंब", "**बहुतेरा** काम", "**थोड़ी** बात"।

(आ) ये विशेषण एकवचन संज्ञा के साथ परिमाण-बोधक और बहुवचन संज्ञा के साथ अनिश्चित संख्यावाचक होते हैं; जैसे—

परिमाण-बोधक	अनिश्चित संख्यावाचक
बहुत दूध	बहुत आदमी
सब जंगल	सब पेड़
सारा देश	सारे देश

परिमाण-बोधक	अनिश्चित संख्यावाचक
बहुतेरा काम	बहुतेरे उपाय
पूरा आनंद	पूरे टुकड़े

[सूचना:—"अल्प", "किंचित्" और "ज़रा" केवल परिमाण-वाचक हैं।]

(इ) परिमाण-बोधक **संज्ञाओं** में "ओं" जोड़ने से उनका प्रयोग अनिश्चित-परिमाण-बोधक **विशेषणों** के समान होता है; जैसे, ढेरों इलायची, मनों घी, गाड़ियों फल।

(ई) कोई कोई परिमाण-बोधक विशेषण एक दूसरे से मिलकर आते हैं; जैसे,

"बहुत-सारा काम"	"बहुत-कुछ आशा"
"थोड़ा-बहुत लाभ"	"कम-ज्यादा आमदनी"

(उ) "बहुत", "थोड़ा", "ज़रा", "अधिक (ज्यादा)", के साथ निश्चय के अर्थ में "सा" प्रत्यय जोड़ा जाता है; जैसे, "**बहुतसा** लाभ", "**थोड़ीसी** विद्या", "**जरासी** बात", "**अधिकसा** बल"।

१५६—कोई कोई परिमाण-बोधक विशेषण क्रिया-विशेषण भी होते हैं; जैसे, "नल ने दमयंती को **बहुत** समझाया।" "यह बात तो कुछ ऐसी **बड़ी** न थी।" "जिनको और सारे पदार्थों की अपेक्षा यश ही **अधिक** प्यारा है।" "लकीर **और** सीधी करो।" "यह सोना **थोड़ा** खोटा है।" "और" समुच्चयबोधक भी होता है; जैसे, हवा चली **और** पानी गिरा।

चौथा अध्याय

क्रिया

१५७—जिस विकारी शब्द के प्रयोग से हम किसी वस्तु के विषय में कुछ विधान करते हैं, उसे **क्रिया** कहते हैं; जैसे, "हरिण **भागा**", "राजा नगर में **आये**", "मैं **जाऊँगा**", "घास हरी **होती है**"। पहले वाक्य में हरिण के विषय में "भागा" शब्द के द्वारा विधान किया गया है; इसलिए "भागा" शब्द क्रिया है। इसी प्रकार दूसरे वाक्य में "आये", तीसरे वाक्य में "जाऊँगा" और चौथे वाक्य में "होती है" शब्द से विधान किया गया है; इसलिए "आये", "जाऊँगा" और "होती है" शब्द क्रिया है।

१५८—जिस मूल शब्द में विकार होने से क्रिया बनती है, उसे **धातु** कहते हैं; जैसे, "भागा" क्रिया में "आ" प्रत्यय है जो "भाग" मूल शब्द में लगा है; इसलिए "भागा" क्रिया का धातु "भाग" है। इसी तरह "आये" क्रिया का धातु "आ", "जाऊँगा" क्रिया का धातु "जा", और "होती है" क्रिया का धातु "हो" है।

(अ) धातु के अंत में "न" जोड़ने से जो शब्द बनता है, उसे **क्रिया का साधारण रूप** कहते हैं; जैसे, भाग-ना, आ-ना, जा-ना, हो-ना। कोश में भाग, आ, जा, हो, इत्यादि धातुओं के बदले

क्रिया के साधारण रूप भागना, आना, जाना, होना, इत्यादि लिखने की चाल है।

(आ) क्रिया का साधारण रूप क्रिया नहीं है; क्योंकि उसके उपयोग से हम किसी वस्तु के विषय में विधान नहीं कर सकते। क्रिया के **साधारण रूप** का प्रयोग बहुधा भाववाचक संज्ञा के समान होता है। कोई कोई इसे क्रियार्थक संज्ञा भी कहते हैं। उदाहरण—"**पढ़ना** एक गुण है।" मैं **पढ़ना** सीखता हूँ।"

(इ) कई एक धातुओं का भी प्रयोग भाववाचक संज्ञा के समान होता है; जैसे, "हम **नाच** नहीं देखते।" आज घोड़ों की **दौड़** हुई।" "तुम्हारी **जाँच** ठीक नहीं निकली।"

(ई) अधिकांश धातु क्रियावाचक होते हैं; जैसे, पढ़, लिख, उठ, बैठ, चल, फेंक, काट। कोई कोई धातु स्थिति-दर्शक भी हैं; जैसे, सो, गिर, मर, हो; और कोई कोई विकार-दर्शक हैं; जैसे, बन, दिख, निकल।

१५९—धातु मुख्यतः दो प्रकार के होते हैं—(१) सकर्मक और (२) अकर्मक।

१६०—जिस धातु से सूचित होनेवाले व्यापार का फल कर्त्ता से निकलकर किसी दूसरी वस्तु पर पड़ता है, उसे **सकर्मक** धातु कहते हैं। जैसे, "सिपाही चोर को **पकड़ता है**।" "नौकर चिट्ठी **लाया**।" पहले वाक्य में "पकड़ता है" क्रिया के व्यापार का फल "सिपाही" कर्त्ता से निकलकर "चोर" पर पड़ता है; इसलिए "पकड़ता है" क्रिया (अथवा "पकड़" धातु) सकर्मक है। दूसरे वाक्य में "लाया"

क्रिया (अथवा "ला" धातु) सकर्मक है; क्योंकि उसका फल "नौकर" कर्त्ता से निकलकर "चिट्ठी" कर्म पर पड़ता है।

(अ) कर्त्ता का अर्थ है "करनेवाला"। क्रिया के व्यापार का करनेवाला (प्राणी वा पदार्थ) "कर्त्ता" कहलाता है। जिस शब्द से इस करनेवाले का बोध होता है, उसे भी (व्याकरण में) बहुधा "कर्त्ता" कहते हैं। जिन क्रियाओं से स्थिति वा विकार का बोध होता है, उनका कर्त्ता वह पदार्थ है जिसकी स्थिति वा विकार के विषय में विधान किया जाता है; जैसे, "स्त्री चतुर है।" "मंत्री राजा होगया।"

(आ) क्रिया से सूचित होनेवाले व्यापार का फल कर्त्ता से निकलकर जिस वस्तु पर पड़ता है; उसे कर्म कहते हैं; जैसे, "सिपाही चोर को पकड़ता है","नौकर चिट्ठी लाया"। पहले वाक्य में "पकड़ता है" क्रिया का फल कर्त्ता से निकलकर चोर पर पड़ता है; इसलिए "चोर" कर्म है। दूसरे वाक्य में "लाया" क्रिया का फल चिट्ठी पर पड़ता है; इसलिए "चिट्ठी" कर्म है।

१६१—जिस धातु से सूचित होनेवाला व्यापार और उसका फल कर्त्ता ही पर पड़े, उसे अकर्मक धातु कहते हैं; जैसे, "गाड़ी चली", "लड़का सोता है"। पहले वाक्य में "चला" क्रिया का व्यापार और उसका फल "गाड़ी" कर्त्ता ही पर पड़ता है। इसलिए "चली" क्रिया अकर्मक है। दूसरे वाक्य में "सोता है" क्रिया भी अकर्मक है; क्योंकि उसका व्यापार और फल "लड़का" कर्त्ता ही पर पड़ता है।

१६२—कोई कोई धातु प्रयोग के अनुसार सकर्मक और अकर्मक दोनों होते हैं; जैसे, खुजलाना, भरना, भूलना, घिसना, बदलना। इनको उभय-विध धातु कहते हैं।

उदा०—"मेरे हाथ **खुजलाते** हैं" (अक०)। "उसका बदन **खुजलाकर** उसकी सेवा करने में उसने कोई कसर नहीं की।" (सक०) "खेल-तमाशे की चीजें देखकर भोले भाले आदमियों का जी **ललचाता** है।" (अक०)। "व्हाइट अपने असबाब की खरीदारी के लिए मदन-मोहन को **ललचाता** है।" (सक०)। "बूँद बूँद करके तालाब **भरता** है।" (अक०)। "प्यारी ने आँखें **भरके** कहा।" (सक०)।

१६३—जब सकर्मक क्रिया के व्यापार का फल किसी विशेष पदार्थ पर न पड़कर उस जाति के सभी पदार्थों पर पड़ता है, तब उसका कर्म प्रकट करने की आवश्यकता नहीं होती; जैसे, "ईश्वर की कृपा से बहरा **सुनता** है और गूँगा **बोलता** है।" "इस पाठशाला में कितने लड़के **पढ़ते** हैं?"

१६४—कुछ अकर्मक धातु ऐसे हैं जिनका आशय कभी कभी अकेले कर्त्ता से पूर्णतया प्रकट नहीं होता। कर्त्ता के विषय में पूर्ण-विधान होने के लिए इन धातुओं के साथ कोई संज्ञा या विशेषण आता है। इन क्रियाओं को **अपूर्ण अकर्मक क्रिया** कहते हैं; और जो शब्द इनका आशय पूरा करने के लिए आते हैं, उन्हें **पूर्ति** कहते हैं। "होना", "रहना", "बनना", "दिखना", "निकलना", "ठहरना", अपूर्ण अकर्मक क्रियाएँ हैं। उदा०—"लड़का **चतुर है**।" "साधु **चोर निकला**।"

"नौकर **बीमार रहा**।" "आप मेरे **मित्र ठहरे**।" "यह मनुष्य **विदेशी दिखता है**।" इन वाक्यों में "चतुर" "चोर", "बीमार" आदि शब्द पूर्त्ति हैं।

(अ) अपूर्ण क्रियाओं से असाधारण अर्थ में पूरा आशय भी पाया जाता है; जैसे, "ईश्वर है", "सवेरा हुआ", "सूरज निकला", "गाड़ी दिखलाई देती है"।

१६५—देना, बतलाना, कहना, सुनना और इन्हीं अर्थों के दूसरे कई सकर्मक धातुओं के साथ दो दो कर्म रहते हैं। एक **कर्म** से बहुधा पदार्थ का बोध होता है और उसे **मुख्य** कर्म कहते हैं; और दूसरा **कर्म**, जो बहुधा प्राणि-वाचक होता है, **गौण** कर्म कहलाता है; जैसे, "गुरु ने **शिष्य को** (गौण कर्म) **पोथी** (मुख्य कर्म) दी।" "मैं **तुम्हें उपाय** बताता हूँ।" इन क्रियाओं को **द्विकर्मक** कहते हैं।

(अ) गौण कर्म कभी कभी लुप्त रहता है; जैसे, "राजा ने दान दिया।" "पंडित कथा सुनाते हैं।"

१६६—कभी कभी करना, बनाना, समझना, पाना, मानना आदि धातुओं का आशय कर्म के रहते भी पूरा नहीं होता, इसलिए उनके साथ **पूर्त्ति** के रूप में कोई संज्ञा या विशेषण आता है; जैसे, "अहिल्याबाई ने गंगाधर को अपना **दीवान** बनाया।" "मैंने चोर को **साधु** समझा।" इन क्रियाओं को अपूर्ण सकर्मक क्रियाएँ कहते हैं और इनकी पूर्ति **कर्म-पूर्त्ति**

कहलाती है। इससे भिन्न अकर्मक अपूर्ण क्रिया की पूर्त्ति को **उद्देश-पूर्त्ति*** कहते हैं।

१६७—किसी किसी अकर्मक और किसी किसी सकर्मक धातु के साथ उसी धातु से बनी हुई भाववाचक संज्ञा **कर्म** के समान प्रयुक्त होती है; जैसे, "लड़का अच्छी **चाल** चलता है।" "सिपाही कई **लड़ाइयाँ** लड़ा।" "लड़कियाँ **खेल** खेल रही हैं।" "पक्षी अनोखी **बोली** बोलते हैं।" ऐसे कर्म को **सजातीय कर्म** और क्रिया को **सजातीय क्रिया** कहते हैं।

यौगिक धातु

१६८—व्युत्पत्ति के अनुसार धातुओं के दो भेद होते हैं—(१) मूल धातु और (२) यौगिक धातु।

१६९—**मूल** धातु वे हैं जो किसी दूसरे शब्द से न बने हों; जैसे, करना, बैठना, चलना, लेना।

१७०—जो धातु किसी दूसरे शब्द से बनाये जाते हैं, वे **यौगिक** धातु कहलाते हैं; जैसे, "चलना" से "चलाना", "रंग" से "रँगना", "चिकना" से "चिकनाना"।

[सूचना—संयुक्त धातु यौगिक धातुओं का एक भेद है।]

१७१—यौगिक धातु तीन प्रकार से बनते हैं—(१) धातु में प्रत्यय जोड़ने से **सकर्मक** तथा **प्रेरणार्थक धातु** बनते हैं; (२) दूसरे शब्द-भेदों में प्रत्यय जोड़ने से **नाम-धातु**

*वाक्य में जिसके विषय में कुछ कहा जाता है, उसे उद्देश कहते हैं।

बनते हैं, और (३) एक धातु में एक वा दो धातु अथवा संज्ञा जोड़ने से **संयुक्त धातु** बनते हैं।

(१) प्रेरणार्थक धातु

१७२—मूल धातु के जिस विकृत रूप से क्रिया के व्यापार में कर्त्ता पर किसी की प्रेरणा समझी जाती है उसे **प्रेरणार्थक** धातु कहते हैं; जैसे, "बाप लड़के से चिट्ठी **लिखवाता है।**" इस वाक्य में मूल धातु "लिख" का विकृत रूप "लिखवा" है जिससे जाना जाता है कि लड़का लिखने का व्यापार बाप की प्रेरणा से करता है; इसलिए "लिखवा" "प्रेरणार्थक" धातु है और "बाप" प्रेरक कर्त्ता तथा "लड़का" प्रेरित कर्त्ता है। "मालिक नौकर से गाड़ी **चलवाता है।**" इस वाक्य में "चलवाता है" प्रेरणार्थक क्रिया, "मालिक" प्रेरक कर्त्ता और "नौकर" प्रेरित कर्त्ता है।

१७३—आना, जाना, सकना, होना, रुचना, पाना आदि धातुओं से अन्य प्रकार के धातु नहीं बनते।

शेष सब धातुओं से दो दो प्रकार के प्रेरणार्थक धातु बनते हैं, जिनका पहला रूप बहुधा सकर्मक क्रिया ही के अर्थ में आता है और दूसरे रूप से यथार्थ प्रेरणा समझी जाती है; जैसे, "घर **गिरता है।**" "कारीगर घर **गिराता है।**" "कारीगर नौकर से घर **गिरवाता है।**" "लोग कथा **सुनते हैं।**" "पंडित लोगों को कथा **सुनाते हैं।**" "पंडित शिष्य से श्रोताओं को कथा **सुनवाते हैं।**"

(अ) सब प्रेरणार्थक क्रियाएँ सकर्मक होती हैं; जैसे, "दबी बिल्ली चूहों से कान कटाती है।" "लड़के ने कपड़ा सिलवाया।"

(आ) पीना, खाना, देखना, समझना, देना, पढ़ना, सुनना, आदि क्रियाओं के दोनों प्रेरणार्थक रूप द्विकर्मक होते हैं; जैसे, "प्यासे को पानी पिलाओ।" "बाप ने लड़के को कहानी सुनाई।" "बच्चे को रोटी खिलवाओ।"

१७४—प्रेरणार्थक क्रियाओं के बनाने के नियम नीचे दिये जाते हैं—

१—मूल धातु के अंत में "आ" जोड़ने से पहला प्रेरणार्थक और "वा" जोड़ने से दूसरा प्रेरणार्थक रूप बनता है; जैसे,

मू० धा०	प० प्रे०	दू० प्रे०
उठ-ना	उठा-ना	उठवा-ना
औट-ना	औटा-ना	औटवा-ना
गिर-ना	गिरा-ना	गिरवा-ना
चल-ना	चला-ना	चलवा-ना
पढ़-ना	पढ़ा-ना	पढ़वा-ना
फैल-ना	फैला-ना	फैलवा-ना

(अ) कहीं कहीं दो अक्षरों के धातु में 'ऐ' वा 'औ' को छोड़कर आदि का अन्य दीर्घ स्वर ह्रस्व हो जाता है; जैसे,

ओढ़ना	उढ़ाना	उढ़वाना
जागना	जगाना	जगवाना

मू० धा०	प० प्रे०	दू० प्रे०
डूबना	डुबाना	डुबवाना
भीगना	भिगाना	भिगवाना
लेटना	लिटाना	लिटवाना

(आ) तीन अक्षर के धातु में पहले प्रेरणार्थक के दूसरे अक्षर का "अ" अनुच्चरित रहता है; जैसे,

चमक-ना	चमका-ना	चमकवा-ना
पिघल-ना	पिघला-ना	पिघलवा-ना
बदल-ना	बदला-ना	बदलवा-ना
समझ-ना	समझा-ना	समझवा-ना

२—एकाक्षरी धातु के अंत में "ला" और "लवा" लगाते हैं और दीर्घ स्वर को ह्रस्व कर देते हैं; जैसे,

खाना	खिलाना	खिलवाना
छूना	छुलाना	छुलवाना
देना	दिलाना	दिलवाना
धोना	धुलाना	धुलवाना
पीना	पिलाना	पिलवाना
सीना	सिलाना	सिलवाना

३—कुछ सकर्मक धातुओं से केवल दूसरे प्रेरणार्थक रूप (१—अ नियम के अनुसार) बनते हैं। जैसे—गाना—गवाना, खेना—खिवाना, खोना—खोआना, बोना—बोआना, लेना—लिवाना।

४—कुछ धातुओं के पहले प्रेरणार्थक रूप "ला" अथवा "आ" लगाने से बनते हैं; परन्तु दूसरे प्रेरणार्थक में "वा" लगाया जाता है; जैसे—

मू० प्रे०	प० प्रे०	दू० प्रे०
कहना	कहाना वा कहलाना	कहवाना
दिखना	दिखाना वा दिखलाना	दिखवाना
सीखना	सिखाना वा सिखलाना	सिखवाना
सूखना	सुखाना वा सुखलाना	सुखवाना
बैठना	बैठाना वा बिठलाना	बिठवाना

(अ) "कहन" के पहले प्रेरणार्थक रूप अपूर्ण अकर्मक भी होते हैं। "कहवाना" का रूप "कहलवाना" भी होता है।

(आ) "बैठना" के कई प्रेरणार्थक रूप होते हैं; जैसे बैठाना, बैठालना, बिठलाना, बैठवाना।

१७५—कुछ धातुओं से बने हुए दोनों प्रेरणार्थक रूप एकार्थी होते हैं; जैसे—

कटना—कटाना वा-कटवाना

खुलना—खुलाना वा खुलवाना

देना—दिलाना वा दिलवाना

सिलना—सिलाना वा सिलवाना

१७६—अकर्मक धातुओं से नीचे लिखे नियमों के अनुसार सकर्मक धातु बनते हैं—

१—धातु के आद्य स्वर को दीर्घ करने से; जैसे,

कटना—काटना	पिसना—पीसना
दबना—दाबना	लुटना—लूटना
बँधना—बाँधना	मरना—मारना

२—तीन अक्षरों के धातु में दूसरे अक्षर का स्वर दीर्घ होता है; जैसे,

निकलना—निकालना	उखड़ना—उखाड़ना
सम्हलना—सम्हालना	बिगड़ना—बिगाड़ना

३—किसी किसी धातु के आद्य इ वा उ को गुण करने से; जैसे,

फिरना—फेरना	खुलना—खोलना
दिखना—देखना	घुलना—घोलना
छिदना—छेदना	मुड़ना—मोड़ना

(अ) कई धातुओं के अंत्य ट के स्थान में ड़ हो जाता है; जैसे,

जुटना—जोड़ना	टूटना—तोड़ना
छूटना—छोड़ना	फटना—फाड़ना

फूटना—फोड़ना

(२) नाम-धातु

१७७—धातु को छोड़ दूसरे शब्दों में प्रत्यय जोड़ने से जो धातु बनाये जाते हैं उन्हें **नाम-धातु** कहते हैं। ये संज्ञा वा विशेषण के अंत में "ना" जोड़ने से बनते हैं।

(अ) संस्कृत शब्दों से; जैसे, उद्धार—उद्धारना, स्वीकार—स्वीकारना, धिक्कार—धिक्कारना, अनुराग—अनुरागना।

[सूचना—इस प्रकार के शब्द कभी कभी कविता में आते हैं।]

(आ) अरबी, फारसी शब्दों से; जैसे,

गुजर—गुजरना	खरीद—खरीदना
बदल—बदलना	दाग—दागना

[सूचना—इस प्रकार के शब्द अनुकरण से नये नहीं बनाये जा सकते।]

(इ) हिंदी शब्दों से (शब्द के अंत में 'आ' करके और आद्य "अ" को ह्रस्व करके); जैसे,

दुख—दुखना	बात—बतियाना, बताना
चिकना—चिकनाना	हाथ—हथियाना

[सूचना—इस प्रकार के शब्दों का प्रचार अधिक नहीं है। इनके बदले बहुधा संयुक्त क्रियाओं का उपयोग होता है; जैसे, दुखाना—दुख देना; बतियाना—बात करना; अलगाना—अलग करना।]

१७८—किसी पदार्थ की ध्वनि के अनुकरण पर जो धातु बनाये जाते हैं, उन्हें **अनुकरण-धातु** कहते हैं। ये धातु ध्वनि-सूचक शब्द के अन्त में "आ" करके "ना" जोड़ने से बनते हैं; जैसे,

बड़बड़—बड़बड़ाना	खटखट—खटखटाना
थरथर—थरथराना	टर्र—टर्राना

[सूचना—ये धातु भी शिष्ट सम्मति के बिना नहीं बनाये जाते।]

(३) संयुक्त-धातु

सूचना—संयुक्त-धातु कुछ कृदन्तों (धातु से बने हुए शब्दों) की सहायता से बनाये जाते हैं, इसलिए इनका विवेचन क्रिया के रूपांतर-प्रकरण में किया जायगा।]

———

दूसरा खंड

अव्यय

पहला अध्याय

क्रिया-विशेषण

१७९—जिस अव्यय से क्रिया की कोई विशेषता जानी जाती है, उसे क्रिया-विशेषण कहते हैं; जैसे, यहाँ, वहाँ, जल्दी, धीरे, अभी, बहुत, कम।

१८०—क्रिया-विशेषणों का वर्गीकरण तीन आधारों पर हो सकता है—(१) प्रयोग, (२) रूप और (३) अर्थ।

१८१—प्रयोग के अनुसार क्रिया-विशेषण तीन प्रकार के होते हैं—(१) साधारण, (२) संयोजक और (३) अनुबद्ध।

(१) जिन क्रिया-विशेषणों का प्रयोग किसी वाक्य में स्वतंत्र होता है, उन्हें **साधारण** क्रिया-विशेषण कहते हैं; जैसे, "**अब** मैं क्या करूँ !" "बेटा, **जल्दी** आओ।" "अरे ! वह साँप **कहाँ** गया ?"

(२) जिनका संबंध किसी उपवाक्य के साथ रहता है, उन्हें **संयोजक** क्रिया-विशेषण कहते हैं; जैसे, "**जब** रोहिताश्व ही नहीं तो मैं ही जी के क्या करूँगी।" "**जहाँ** अभी समुद्र है, वहाँ पर किसी समय जंगल था।"

[सूचना—संयोजक क्रिया-विशेषण—जब, जहां, जैसे, ज्यों, जितना, संबंध-वाचक सर्वनाम "जो" से बनते हैं और उसी के अनुसार दो उपवाक्यों को मिलाते हैं (अं०—१११)]

(३) **अनुबद्ध** क्रिया-विशेषण वे हैं जिनका प्रयोग अवधारण के लिए किसी भी शब्द-भेद के साथ हो सकता है; जैसे, "यह **तो** किसी ने धोखा **ही** दिया है।" "मैंने उसे देखा **तक** नहीं।" "आपके आने **भर** की देर है ।" "लड़का **भी** आया है।"

१८२—रूप के अनुसार क्रिया-विशेषण दो प्रकार के होते हैं—(१) मूल और (२) यौगिक।

१८३—जो क्रिया-विशेषण किसी दूसरे शब्द से नहीं बनते, वे **मूल** क्रिया-विशेषण कहलाते हैं; जैसे, ठीक, दूर, अचानक, फिर, नहीं।

१८४—जो क्रिया-विशेषण दूसरे शब्दों में प्रत्यय वा शब्द जोड़ने से बनते हैं, उन्हें **यौगिक** क्रिया-विशेषण कहते हैं। वे नीचे लिखे शब्द-भेदों से बनते हैं—

(अ) संज्ञा से; जैसे, सवेरे, मन से, क्रमशः, आगे, रात को, प्रेम-पूर्वक, दिन भर, रात तक।

(आ) सर्वनाम से; जैसे, यहाँ, वहाँ, अब, जब, जिससे, इसलिए, तिस पर।

(इ) विशेषण से; जैसे, धीरे, चुपके, भूले से, सहज में, पहले, ऐसे, भले, थोड़े।

(ई) धातु से; जैसे, आते, करते, देखते हुए, चाहे, लिए, बैठे हुए।

(उ) अव्यय से; जैसे, यहाँ तक, कब का, ऊपर को, झट से, वहाँ पर।

(ऊ) क्रिया-विशेषणों के साथ निश्चय जताने के लिए बहुधा ई वा ही लगाते हैं; जैसे, अब—अभी, यहाँ—यहीं, आते—आते ही, पहले—पहले ही।

१८५—संयुक्त क्रिया-विशेषण नीचे लिखे शब्दों के मेल से बनते हैं—

(अ) संज्ञाओं की द्विरुक्ति से; अथवा दो भिन्न भिन्न संज्ञाओं के मेल से; जैसे, घर-घर, घड़ी-घड़ी, रातों-रात, हाथों-हाथ, रात-दिन, साँझ-सबेरे, देश-विदेश।

(आ) विशेषणों की द्विरुक्ति से; जैसे, एका-एक, ठीक-ठीक, साफ-साफ।

(इ) क्रिया-विशेषणों की द्विरुक्ति से अथवा दो भिन्न भिन्न क्रिया-विशेषणों के मेल से; जैसे, धीरे-धीरे, जहाँ-जहाँ, कब-कब, बैठे-बैठे, जहाँ-तहाँ, तले-ऊपर।

(ई) अनुकरणवाचक शब्दों की द्विरुक्ति से; जैसे, गटगट, तड़तड़, सटासट, धड़ाधड़।

(उ) संज्ञा और विशेषण के मेल से; जैसे, एक साथ, एक-बार, दो-बार, हर-घड़ी, जबरदस्ती, लगातार।

(ऊ) अव्यय और दूसरे शब्दों के मेल से; जैसे, प्रतिदिन, यथाक्रम, अनजाने, निःसंदेह, बे-फायदा।

(ऋ) पूर्वकालिक कृदंत (करके) और विशेषण के मेल से; जैसे, मुख्य-करके, विशेष-करके, बहुत-करके, एक-एक-करके।

१८६—हिन्दी में कई एक संस्कृत और कुछ उर्दू क्रिया-विशेषण भी आते हैं। ये शब्द तत्सम* और तद्भव† दोनों प्रकार के होते हैं।

(१) संस्कृत क्रिया-विशेषण

तत्सम—अकस्मात्, पश्चात्, प्रायः, बहुधा, पुनः, अतः, अस्तु, वृथा; व्यर्थ, वस्तुतः, संप्रति, कदाचित्।

तद्भव—आज (सं०—अद्य), कल (सं०—कल्य), परसों (सं०—परश्व), बारम्बार (सं०—वारंवारं), आगे (सं०—अग्रे), साढ़े (सं०—सार्धम्), सामने (सं०—सम्मुखम्)।

(२) उर्दू क्रिया-विशेषण

तत्सम—शायद, ज़रूर, बिलकुल, अकसर, फ़ौरन, बाला-बाला।

तद्भव—हमेशा (फ़ा०—हमेशह), सही (अ०—सहीह), नगीच (फ़ा०—नज़दीक), जल्दी (फ़ा०—जल्द), खूब (फ़ा०—ख़ूब)।

---

* हिन्दी में प्रचलित मूल संस्कृत शब्द।

† संस्कृत से बिगड़कर बने हुए शब्द।

१८७—अर्थ के अनुसार क्रिया-विशेषणों के नीचे लिखे चार भेद होते हैं—

(१) स्थानवाचक, (२) कालवाचक, (३) परिमाण-वाचक और (४) रीतिवाचक।

१८८—स्थान-वाचक क्रिया-विशेषण के दो भेद हैं—(१) स्थितिवाचक और (२) दिशावाचक।

(१) स्थितिवाचक—यहाँ, वहाँ, जहाँ, कहाँ, तहाँ, आगे, पीछे, ऊपर, नीचे, सामने, साथ, पास, सर्वत्र।

(२) दिशावाचक—इधर, उधर, किधर, जिधर, दूर, परे, अलग, आरपार, इस तरफ, उस जगह।

१८९—कालवाचक क्रिया-विशेषण तीन प्रकार के होते हैं—(१) समयवाचक, (२) अवधिवाचक, (३) पौनःपुन्यवाचक।

(१) समयवाचक—आज, कल, परसों, नरसों, अब, जब, कब, तब, अभी, कभी, जभी, तभी, फ़िर, तुरन्त, सवेरे, निदान।

(२) अवधिवाचक—आजकल, नित्य, सदा, सर्वदा, निरन्तर, अब तक, कभी कभी, लगातार, दिन भर, कब का।

(३) पौनःपुन्यवाचक—बार-बार (वारंवार), बहुधा (अकसर), प्रतिदिन (हर रोज़); घड़ी-घड़ी, कई बार, पहले—फिर, एक—दूसरे—तीसरे इत्यादि।

१९०—परिमाणवाचक क्रिया-विशेषणों से अनिश्चित संख्या वा परिमाण का बोध होता है। उनके भेद ये हैं—

(अ) अधिकताबोधक—बहुत, अति, बड़ा, भारी, बहुतायत से, बिलकुल, सर्वथा, निरा, खूब, पूर्णतया, निपट, अत्यंत ।

(आ) न्यूनताबोधक—कुछ, लगभग, थोड़ा, टुक, अनुमान, प्रायः, जरा, किंचित् ।

(इ) पर्याप्तिवाचक—केवल, बस, काफी, यथेष्ट, चाहे, बराबर, ठीक, अस्तु ।

(ई) तुलनावाचक—अधिक, कम, इतना, उतना, जितना, कितना, बढ़ कर, और ।

(उ) श्रेणीवाचक—थोड़ा-थोड़ा, क्रम-क्रम से, बारी-बारी से, तिल-तिल, एक-एक-करके, यथाक्रम ।

१९१—रीतिवाचक क्रिया-विशेषणों की संख्या गुणवाचक विशेषणों के समान बहुत अधिक है। इस वर्ग में उन सब क्रिया-विशेषणों का समावेश किया जाता है जिनका अंतर्भाव पहले कहे हुए वर्गों में नहीं होता। रीतिवाचक क्रिया-विशेषण नीचे लिखे हुए अर्थों में आते हैं।

(अ) प्रकार—ऐसे, वैसे, कैसे, तैसे, मानो, धीरे, अचानक, वृथा, सहज, साक्षात्, सेंतमेंत, योंही, हौले, पैदल, जैसे-तैसे, स्वयं, परस्पर, आपही आप, एक-साथ, एकाएक, मन से, ध्यानपूर्वक, संदेह ।

(आ) निश्चय—अवश्य, सही, सचमुच, निःसंदेह, बेशक, ज़रूर, मुख्य करके, विशेष करके, यथार्थ में ।

(इ) अनिश्चय—कदाचित् (शायद), बहुत-करके, यथा-संभव।

(ई) स्वीकार—हाँ, जी, ठीक, सच।

(उ) कारण—इसलिए, क्यों, काहे को।

(ऊ) निषेध—न, नहीं, मत।

(ऋ) अवधारण—तो, ही, भी; मात्र, भर, तक।

१६२—यौगिक क्रिया-विशेषण दूसरे शब्दों में नीचे लिखे शब्द अथवा प्रत्यय जोड़ने से बनते हैं—

(१) संस्कृत क्रिया-विशेषण

पूर्वक—ध्यान-पूर्वक, प्रेम-पूर्वक।

या—कृपया, विशेषतया।

अनुसार—रीत्यनुसार, शक्त्यनुसार।

तः—स्वभावतः, वस्तुतः, स्वतः।

दा—सर्वदा, सदा, यदा, कदा।

शः—क्रमशः, अक्षरशः।

त्र—एकत्र, सर्वत्र, अन्यत्र।

था—सर्वथा, अन्यथा।

(२) हिंदी क्रिया-विशेषण

ते—चलते, आते, मारते।

ए—लिए, उठाए, बैठे, चाहे।

को—इधर को, दिन को, रात को, अंत को।

से—धर्म से, मन से, प्रेम से, इधर से, तब से।

में—संक्षेप में, इतने में, अंत में।

का—सबेरे का, कब का।

तक—आज तक, यहाँ तक, रात तक, घर तक।

कर, करके—दौड़कर, उठकर, देख करके, विशेष करके, बहुत करके, क्योंकर।

भर—रातभर, पलभर, दिनभर।

(अ) नीचे लिखे प्रत्ययों वा शब्दों से सार्वनामिक क्रिया-विशेषण बनते हैं—

ए—ऐसे, कैसे, जैसे, वैसे, तैसे।

हाँ—यहाँ, कहाँ, जहाँ, तहाँ।

धर—इधर, उधर, जिधर, तिधर।

यों—यों, त्यों, ज्यों, क्यों।

लिए—इसलिए, जिसलिए, किसलिए।

ब—अब, तब, कब, जब।

(३) उर्दू क्रिया-विशेषण

अन—ज़बरन, फ़ौरन, मसलन।

दूसरा अध्याय

संबंधसूचक

१९३—जो अव्यय संज्ञा (अथवा संज्ञा के समान उपयोग में आनेवाले शब्द) के बहुधा आगे आकर उसका संबंध

वाक्य के किसी दूसरे शब्द के साथ मिलाता है, उसे संबंध-सूचक कहते हैं; जैसे, "धन के **बिना** किसी का काम नहीं चलता।" "नौकर गाँव **तक** गया।" रात **भर** जागना अच्छा नहीं होता।" इन वाक्यों में 'बिना', 'तक' और 'भर' संबंधसूचक हैं। "बिना" शब्द "धन" संज्ञा का संबंध "चलता" क्रिया से मिलाता है; "तक" "गाँव" का संबंध "गया" से मिलाता है और "भर" "रात" का संबंध "जागना" क्रियार्थक संज्ञा के साथ जोड़ता है।

१९४—कोई कोई कालवाचक और स्थानवाचक अव्यय क्रिया-विशेषण भी होते हैं और संबंधसूचक भी। जब वे स्वतंत्र रूप से क्रिया की विशेषता बताते हैं, तब उन्हें क्रिया-विशेषण कहते हैं, परंतु जब उनका प्रयोग संज्ञा के साथ होता है तब वे संबंधसूचक कहलाते हैं; जैसे—

नौकर **यहाँ** रहता है। (क्रिया-विशेषण)

नौकर मालिक के **यहाँ** रहता है। (संबंधसूचक)

यह काम **पहले** करना चाहिए। (क्रि० वि०)

यह काम जाने से **पहले** करना चाहिए। (सं० सू०)

१९५—प्रयोग के अनुसार संबंध-सूचक दो प्रकार के होते हैं—(१) संबद्ध और (२) अनुबद्ध।

(१) संबद्ध संबंधसूचक संज्ञाओं की विभक्तियों के आगे आते हैं; जैसे, धन के **बिना**, नर की **नाईं**, पूजा से **पहले**।

(२) अनुबद्ध संबंधसूचक संज्ञा के विकृत रूप के साथ आते हैं; जैसे; किनारे तक, सखियों सहित, कटोरे भर, पुत्रों समेत, लड़के सरीखा।

(क) ने, को, से, का-के की, में, भी अनुबद्ध संबंध-सूचक हैं; परंतु नीचे लिखे कारणों से इन्हें संबंधसूचकों में नहीं गिनते—

(अ) इनमें से प्राय: सभी संस्कृत के विभक्ति-प्रत्ययों के अपभ्रंश हैं; इसलिए हिंदी में भी ये प्रत्यय माने जाते हैं।

(आ) ये स्वतंत्र शब्द न होने के कारण अर्थहीन हैं; परंतु संबंध-सूचक बहुधा स्वतंत्र शब्द होने के कारण सार्थक हैं।

१९६—संबद्ध संबंधसूचकों के पहले बहुधा "के" विभक्ति आती है; जैसे, धन के लिए; भूख के मारे; स्वामी के विरुद्ध; उसके पास।

(अ) नीचे लिखे अव्ययों के पहले (स्त्रीलिंग के कारण) "की" आती है—अपेक्षा, ओर, जगह, नाईं, खातिर, तरह, तरफ, मारफत।

[सूचना—जब "ओर" ("तरफ") के साथ संख्यावाचक विशेषण आता है, तब "की" के बदले "के" का प्रयोग होता है; जैसे, "नगर के चारों ओर (तरफ)।"]

१९७—आगे, पीछे, तले, बिना आदि कई संबंधसूचक कभी कभी बिना विभक्ति के आते हैं; जैसे; पाँव तले, पीठ पीछे, कुछ दिन आगे, शकुंतला बिना।

(अ) कविता में बहुधा पूर्वोक्त विभक्तियों का लोप होता है; जैसे, मातु-समीप। सभा-मध्य। पिता-पास।

१९८—"परे" और "रहित" के पहले "से" आता है। "पहले", "पीछे", "आगे" और "बाहर" के साथ "से" विकल्प से लाया जाता है। जैसे, समय से (वा समय के) पहले, सेना के (वा सेना से) पीछे, जाति से (वा जाति के) बाहर।

१९९—"मारे", "बिना" और "सिवा" कभी कभी संज्ञा के पहले आते हैं; जैसे, मारे भूख के, सिवा पत्तों के, बिना हवा के। "बिना", "अनुसार" और "पीछे" बहुधा भूतकालिक कृदंत के विकृत रूप के आगे (बिना विभक्ति के) आते हैं; जैसे, "ब्राह्मण का ऋण **दिये** बिना।" "नीचे **लिखे** अनुसार।" "रोशनी **हुए** पीछे।"

२००—"योग्य" और "लायक" बहुधा क्रियार्थक संज्ञा के विकृत रूप के साथ आते हैं; जैसे, "जो पदार्थ **देखने योग्य** हैं।" "याद **रखने लायक**।"

२०१—स्मरण की सहायता के लिए यहाँ संबंधसूचकों का वर्गीकरण दिया जाता है—

कालवाचक—आगे, पीछे, बाद, पहले, पूर्व, अनंतर, पश्चात्, उपरांत, लगभग।

स्थानवाचक—आगे, पीछे, ऊपर, नीचे, तले, सामने, पास, निकट, समीप, नजदीक (नगीच), यहाँ, बीच, बाहर, परे, दूर, भीतर।

दिशावाचक—ओर, तरफ, पार, आरपार, आसपास, तईं, प्रति।

साधनवाचक—द्वारा, जरिये, हाथ, मारफत, बल करके, जबानी, सहारे।

हेतुवाचक—लिए, निमित्त, वास्ते, हेतु, हित (कविता में), खातिर, कारण, सबब, मारे।

विषयवाचक—बाबत, निस्बत, विषय, नाम (नामक), लेखे, जान, भरोसे, मध्ये।

व्यतिरेकवाचक—सिवा (सिवाय), अलावा, बिना, बगैर, अतिरिक्त, रहित।

विनिमयवाचक—पलटे, बदले, जगह, एवज।

सादृश्यवाचक—समान, तरह, भाँति, नाईं, बराबर, तुल्य, योग्य, लायक, सदृश, अनुसार, अनुरूप, अनुकूल, देखा देखी, सरीखा, सा, ऐसा, जैसा।

विरोधवाचक—विरुद्ध, खिलाफ, उलटा, विपरीत।

सहचारवाचक—संग, साथ, समेत, सहित, अधीन, स्वाधीन, वश।

संग्रहवाचक—तक, लों, पर्यंत, सुद्धां, भर, मात्र।

तुलनावाचक—अपेक्षा, बनिस्बत, आगे, सामने।

२०२—व्युत्पत्ति के अनुसार संबंधसूचक दो प्रकार के हैं—(१) मूल और (२) यौगिक। हिंदी में **मूल** (शुद्ध) संबंध-सूचक बहुत कम हैं; जैसे, बिना, पर्यंत, नाईं। **यौगिक** संबंध-सूचक दूसरे शब्द-भेदों से बने हैं; जैसे;—

(१) संज्ञा से—पलटे, वास्ते, ओर, अपेक्षा, नाम, लेखे, विषय, मारफत।

(२) विशेषण से—तुल्य, समान, उलटा, जबानी, सरीखा, योग्य, जैसा, ऐसा।

(३) क्रिया-विशेषण से—ऊपर, भीतर, यहाँ, बाहर, पास, परे, पीछे।

(४) क्रिया से—लिए, मारे, करके, जान।

[सूचना—अव्यय के रूप में "लिये" को बहुधा "लिए" लिखते हैं।]

तीसरा अध्याय

समुच्चय-बोधक

२०३—जो अव्यय एक वाक्य का संबंध दूसरे वाक्य से मिलाता है, उसे **समुच्चय-बोधक** कहते हैं; जैसे, और, यदि, तो, क्योंकि, इसलिए।

"हवा चली और पानी गिरा"—यहां "और" समुच्चय-बोधक है; क्योंकि वह पूर्व वाक्य का संबंध उत्तर वाक्य से मिलाता है। कभी कभी समुच्चय-बोधक जोड़े जानेवाले वाक्य पूर्णतया स्पष्ट नहीं रहते; जैसे, "कृष्ण और बलराम गये।" इस प्रकार के वाक्य देखने में एक ही से जान पड़ते हैं; परंतु दोनों वाक्यों में क्रिया एक ही होने के कारण संक्षेप के लिए उसका प्रयोग केवल एक ही बार किया गया है। ये दोनों वाक्य स्पष्ट रूप से यों लिखे जायँगे—"कृष्ण गये और बलराम गये।" इसलिए यहाँ "और" दो वाक्यों को मिलाता है। "यदि सूर्य न हो तो कुछ भी न हो।" इस उदाहरण में "यदि" और "तो" दो वाक्यों को जोड़ते हैं।

२०४—समुच्चय-बोधक अव्ययों के मुख्य दो भेद हैं—(१) समानाधिकरण और (२) व्यधिकरण।

२०५—जिन अव्ययों के द्वारा मुख्य वाक्य जोड़े जाते हैं, उन्हें **समानाधिकरण** समुच्चय-बोधक कहते हैं। इनके चार उपभेद हैं—

(अ) **संयोजक**—और, व, तथा, एवं। इनके द्वारा दो वा अधिक मुख्य वाक्यों का संग्रह होता है; जैसे, "बिल्ली के पं[illegible]ते हैं **और** उनमें नख होते हैं।"

[illegible])—इस शब्द के सर्वनाम, विशेषण और क्रिया-विशेषण होने के [illegible] पहले दिये जा चुके हैं। (अं०—१५४, १५५, १६०)।

व—यह उर्दू शब्द "और" का पर्यायवाचक है। इसका प्रयोग द[illegible]ा शिष्ट लेखक नहीं करते, क्योंकि वाक्यों के बीच में इसका उच्चारण कठिनाई से होता है। इस "व" में और संस्कृत "वा" में, जिसका अर्थ "व" का उलटा है, बहुधा गड़बड़ और भ्रम भी हो जाता है।

तथा—इसका प्रयोग बहुधा "और" के अर्थ में होता है; जैसे, "पहले पहल वहाँ भी अनेक क्रूर **तथा** भयानक उपचार किये जाते थे।" इसका अधिकतर प्रयोग "और" शब्द की द्विरुक्ति का निवारण करने के लिए होता है।

(आ) **विभाजक**—या, वा, अथवा, किंवा, या—या, चाहे—चाहे, क्या—क्या, न—न, न कि, नहीं तो।

इन अव्ययों से दो या अधिक वाक्यों वा शब्दों में से किसी एक का ग्रहण अथवा दोनों का त्याग होता है।

या, वा, अथवा, किंवा—ये चारों शब्द प्रायः पर्यायवाची हैं। इनमें से, "या" उर्दू और शेष तीन संस्कृत हैं। "अथवा" और "किंवा" में दूसरे अव्ययों के साथ "वा" मिला है। द्विरुक्ति के निवारण के लिए इन शब्दों का एक साथ प्रयोग होता है; जैसे, "किसी पुस्तक की अथवा किसी ग्रंथकार या प्रकाशक की एक से अधिक पुस्तकों की प्रशंसा में किसी ने एक प्रस्ताव पास कर दिया।"

या—या—ये शब्द जोड़े से आते हैं और अकेले "या" की अपेक्षा विभाग का अधिक निश्चय सूचित करते हैं; जैसे, "या तो [illegible] पेड़ में फाँसी लगाकर मर जाऊँगी या गंगा में कूद पड़ूँगी।"

प्रायः इसी अर्थ में "चाहे—चाहे" आते हैं; जैसे, "[illegible] को राई करै रचि राई को चाहे सुमेरु बनावै।" ये शब्द "च[illegible]" क्रिया से बने हुए हैं।

क्या—क्या—ये प्रश्नवाचक सर्वनाम समुच्चय-बोधक के समान उपयोग में आते हैं। ये वाक्य में दो वा अधिक शब्दों का विभाग बताकर उन सबका इकट्ठा उल्लेख करते हैं; जैसे, "क्या मनुष्य और क्या जीवजन्तु, मैंने अपना सारा जन्म इन्हीं का भला करने में गँवाया।" "क्या स्त्री क्या पुरुष सबही के मन में आनन्द छा रहा था।"

न—न—ये दुहरे क्रिया-विशेषण समुच्चय-बोधक होकर आते हैं। इनसे दो या अधिक शब्दों में से प्रत्येक का त्याग सूचित होता है; जैसे, "न उन्हें नींद आती थी न भूख प्यास लगती थी।" कभी कभी इनसे अशक्यता का भी बोध होता है; जैसे, "न ये अपने प्रबन्धों से छुट्टी पावेंगे न कहीं जायँगे।"

न कि—यह "न" और "कि" से मिलकर बना है; इससे बहुधा दो बातों में से दूसरी का निषेध सूचित होता है ; जैसे, "अँगरेज लोग व्यापार के लिए आये थे न कि देश जीतने के लिए।"

नहीं तो—यह भी संयुक्त क्रिया-विशेषण है और समुच्चय-बोधक के समान उपयोग में आता है। इससे किसी बात के त्याग का फल सूचित होता है; जैसे, "उसने मुँह पर घूँघट सा डाल लिया है; नहीं तो राजा की आँखें कब उस पर ठहर सकती थीं !"

(इ) **विरोधदर्शक**—पर, परंतु, किंतु, लेकिन, बरन, बल्कि। ये अव्यय दो वाक्यों में से पहले का निषेध वा परिमिति सूचित करते हैं।

पर—"पर" ठेठ हिन्दी शब्द है; "परंतु" तथा "किंतु" संस्कृत शब्द हैं और "लेकिन" उर्दू है। "पर", "परंतु" और "लेकिन" पर्यायवाची हैं।

किन्तु, बरन—ये शब्द भी प्रायः पर्यायवाची हैं और इनका प्रयोग बहुधा निषेधवाचक वाक्यों के पश्चात् होता है; जैसे, "मैं केवल सँपेरा नहीं हूँ; किंतु भाषा का कवि भी हूँ।" "इस संदेह का इतने काल बीतने पर यथोचित समाधान करना कठिन है; बरन बड़े बड़े विद्वानों की मति भी इसके विरुद्ध है।" "बरन" के पर्यायवाची "वरंच" (संस्कृत) और "बल्कि" (उर्दू) हैं।

(ई) **परिणामदर्शक**—इसलिए, सो, अतः, अतएव। इन अव्ययों से यह जाना जाता है कि इनके आगे के वाक्य का अर्थ पिछले वाक्य के अर्थ का फल है; जैसे, "अब भोर होने

लगा था, **इसलिए** दोनों जन अपनी अपनी ठौरों से उठे।" इस उदाहरण में "दोनों जन अपनी अपनी ठौरों से उठे" यह वाक्य परिणाम सूचित करता है; और "अब भोर होने लगा" यह कारण बतलाता है; इस कारण "इसलिए" परिणामदर्शक समुच्चय-बोधक है। यह शब्द मूल समुच्चय-बोधक नहीं है। किंतु "इस" और "लिए" के मेल से बना है।

"इसलिए" के बदले कभी कभी "इससे", "इस वास्ते" वा "इस कारण" भी आता है।

अतएव, अतः—ये संस्कृत शब्द "इसलिए" के पर्यायवाचक हैं और इनका प्रयोग उच्च हिंदी में होता है।

सो।—यह निश्चयवाचक सर्वनाम "इसलिए" के अर्थ में आता है; परंतु कभी कभी इसका अर्थ "तब" वा "परंतु" भी होता है। जैसे, "मैं घर से बहुत दूर निकल गया था; सो मैं बड़े खेद से नीचे उतरा।" "कंस ने अवश्य यशोदा की कन्या के प्राण लिये थे, सो वह असुर था।"

२०६—जिन अव्ययों के योग से एक मुख्य वाक्य में एक वा अधिक आश्रित वाक्य जोड़े जाते हैं, उन्हें **व्यधिकरण** समुच्चय-बोधक कहते हैं। इनके चार उपभेद हैं—

(अ) **कारणवाचक**—क्योंकि, जो कि, इसलिए—कि।

इन अव्ययों से आरम्भ होनेवाले वाक्य पूर्व वाक्य का समर्थन करते हैं अर्थात् पूर्व वाक्य के अर्थ का कारण उत्तर वाक्य के अर्थ से सूचित होता है; जैसे, "इस नाटिका का अनुवाद करना मेरा काम नहीं था, क्योंकि मैं संस्कृत अच्छी नहीं

जानता।" इस उदाहरण में उत्तर वाक्य पूर्व वाक्य का कारण सूचित करता है, इसलिए 'क्योंकि' शब्द कारण-वाचक है।

"क्योंकि" के बदले कभी कभी "कारण" शब्द आकर समुच्चय-बोधक का काम देता है। कभी कभी कारण के अर्थ में परिणाम-बोधक "इसलिए" आता है और तब उसके साथ बहुधा "कि" रहता है; जैसे—

"दुष्यंत—क्यों माढव्य, तुम लाठी से क्यों बुरा कहा चाहते हो ?

माढव्य—इसलिए कि मेरा अंग तो टेढ़ा है और वह सीधी बनी है।"

कभी कभी पूर्व वाक्य में "इसलिए" क्रियाविशेषण के समान आता है और उत्तर वाक्य "कि" समुच्चय-बोधक से आरम्भ होता है; जैसे, "कोई बात केवल इसलिए मान्य नहीं है कि वह बहुत काल से मानी जाती है।" "(मैंने) इसलिए रोका था कि इस यन्त्र में बड़ी शक्ति है।"

जोकि—यह उर्दू "चूँकि" के बदले कानूनी भाषा में कारण सूचित करने के लिए आता है; जैसे, "जोकि यह अमर क़रीन मस्लहत है इसलिए नीचे लिखे मुताबिक़ हुक्म होता है।"

(आ) **उद्देशवाचक**—कि, जो, ताकि, इसलिए—कि।

इन अव्ययों के पश्चात् आनेवाला वाक्य दूसरे वाक्य का उद्देश वा हेतु सूचित करता है। उद्देशवाचक वाक्य बहुधा दूसरे वाक्य के पश्चात् आता है।

उदा०—"हम तुम्हें वृन्दावन भेजा चाहते हैं कि तुम उनका समाधान कर आओ।" "क्या किया जाय जो देहातियों की प्राण-रक्षा हो।" "लोग अक्सर अपना हक पक्का करने के लिए दस्तावेजों की रजिस्टरी करा लेते हैं ताकि उनके दावे में किसी प्रकार का शक न रहे।"

"मछुआ मछली मारने के लिए हर घड़ी मिहनत करता है, इसलिए कि उसको मछली का अच्छा मोल मिले।"

(१) जब उद्देशवाचक वाक्य मुख्य वाक्य के पहले आता है तब उसके साथ कोई समुच्चय-बोधक नहीं रहता; परन्तु मुख्य वाक्य "इस-लिए" से आरम्भ होता है; जैसे, "तपोवनवासियों के कार्य्य में विघ्न न हो, इसलिए रथ को यहीं रखिए।"

(२) "जो" के बदले कभी कभी **जिसमें** वा **जिससे** आता है; जैसे, "बेग बेग चली आ **जिससे** सब एक-संग क्षेम-कुशल से कुटी में पहुँचें।"

(इ) **संकेतवाचक**—जो—तो, यदि—तो, यद्यपि—तथापि (तो भी,) चाहे—परंतु।

ये शब्द संबंधवाचक और नित्य-संबंधी सर्वनामों के समान जोड़े से आते हैं। इन शब्दों के द्वारा जुड़नेवाले वाक्यों में से एक में "जो", "यदि", "यद्यपि", या "चाहे" आता है और दूसरे वाक्य में क्रमशः "तो", "तथापि" (तोभी) अथवा "परंतु" आता है। जिस वाक्य में "जो", "यदि", "यद्यपि" या "चाहे" का प्रयोग होता है उसे पूर्व वाक्य और दूसरे को उत्तर वाक्य कहते हैं। इन अव्ययों को "संकेत-वाचक" कहने का कारण यह है कि पूर्व वाक्य में जिस घटना का वर्णन रहता है, उससे उत्तर वाक्य की घटना का संकेत पाया जाता है।

जो—तो—जब पूर्व वाक्य में कही हुई शर्त पर उत्तर वाक्य की घटना निर्भर होती है, तब इन शब्दों का प्रयोग होता है। इसी अर्थ में

"यदि—तो" आते हैं। "जो" साधारण भाषा में और 'यदि' शिष्ट अथवा पुस्तक की भाषा में आता है। उदा०—"जो तू अपने मन से सच्ची है तो पति के घर में दासी होकर भी रहना अच्छा है।" "यदि ईश्वरेच्छा से यह वही ब्राह्मण हो तो बड़ी अच्छी बात है।" अवधारण में "तो," के बदले "तोभी" आता है; जैसे, "जो (कुटुम्ब) होता तोभी मैं न देता।"

"जो" कभी कभी "जब" के अर्थ में आता है; जैसे, "जो वह स्नेह ही न रहा तो अब सुधि दिलाये क्या होता है।"

"जो" का पर्यायवाची उर्दू शब्द "अगर" भी हिन्दी में प्रचलित है।

यद्यपि—तथापि (तोभी)—ये शब्द जिन वाक्यों में आते हैं, उनके निश्चयात्मक विधानों में परस्पर विरोध पाया जाता है; जैसे, "यद्यपि यह देश तब तक जङ्गलों से भरा हुआ था, तथापि अयोध्या अच्छी बस गई थी।" "तथापि" के बदले बहुधा "तोभी" और कभी कभी "परन्तु" आता है; जैसे, "यद्यपि हम वनवासी हैं तोभी लोक के व्यवहारों को भली भाँति जानते हैं।" "यद्यपि गुरु ने कहा है, पर यह तो बड़ा पाप सा है।"

चाहे—परंतु—जब "यद्यपि" के अर्थ में कुछ संदेह रहता है, तब उसके बदले "चाहे" आता है; जैसे, "उसने चाहे अपनी सखियों की ओर ही देखा हो, परंतु मैंने यही जाना।"

"चाहे" बहुधा संबंधवाचक सर्वनाम, विशेषण वा क्रिया-विशेषण के साथ आकर उनकी विशेषता बतलाता है और प्रयोग के अनुसार क्रिया-विशेषण होता है; जैसे, "यहाँ चाहे जो कह लो; परंतु अदालत

में तुम्हारी गीदड़-भवकी नहीं चल सकती।" "मेरे रनवास में चाहे जितनी रानियाँ हों, मुझे दो ही वस्तुएँ संसार में प्यारी होंगी।" "मनुष्य बुद्धि-विषयक ज्ञान में चाहे जितना पारङ्गत हो जाय, परन्तु उसके ज्ञान से विशेष लाभ नहीं हो सकता।"

(ई) **स्वरूपवाचक**—कि, जो, अर्थात्, याने, मानो।

इन अव्ययों के द्वारा जुड़े हुए शब्दों वा वाक्यों में से पहले शब्द वा वाक्य का स्वरूप (आशय) पिछले शब्द वा वाक्य से जाना जाता है; इसलिए इन अव्ययों को स्वरूप-वाचक कहते हैं।

कि—जब यह अव्यय स्वरूपवाचक होता है, तब इससे किसी बात का केवल आरम्भ वा प्रस्तावना सूचित होती है; जैसे, "श्रीशुकदेव मुनि बोले कि महाराज, अब आगे कथा सुनिए।" "मेरे मन में आती है कि इससे कुछ पूछूँ।" "बात यह है कि लोगों की रुचि एक सी नहीं होती।"

जो—यह स्वरूपवाचक "कि" का समानार्थी है, परन्तु उसकी अपेक्षा अब व्यवहार में कम आता है। "प्रेमसागर" में इसका प्रयोग कई जगह हुआ है; जैसे, "यही विचारो जो मथुरा और वृन्दावन में अंतर ही क्या है।" "उसने बड़ी भारी चूक की जो तेरी माँग श्रीकृष्ण को दी।"

अर्थात्—यह संस्कृत अव्यय किसी शब्द वा वाक्य का अर्थ समझाने में आता है; जैसे, "धातु के टुकड़े ठप्पे के होने से सिक्का अर्थात् मुद्रा कहाते हैं।" "गौतम बुद्ध अपने पाँचों चेलों समेत चौमासे भर अर्थात् बरसात भर बनारस में रहा।" "इनमें परस्पर सजातीय भाव

है, अर्थात् ये एक दूसरे से जुदा नहीं हैं।" कभी कभी "अर्थात्" के बदले "अथवा", "वा", "या" आते हैं; जैसे, "वस्ती अर्थात् जनस्थान वा जनपद का तो नाम भी मुश्किल से मिलता था।" "तुम्हारी हैसियत वा स्थिति चाहे जैसी हो।" "याने" (उर्दू) "अर्थात्" का समानार्थी है।

मानो—उत्प्रेक्षा* में आता है; जैसे, "यह चित्र ऐसा सुहावना लगता है **मानो** साक्षात् सुन्दरापा आगे खड़ा हो।"

चौथा अध्याय

विस्मयादि-बोधक

२०७—जिन अव्ययों का संबंध वाक्य से नहीं रहता और जो वक्ता के केवल हर्ष-शोकादि भाव सूचित करते हैं, उन्हें विस्मयादि-बोधक अव्यय कहते हैं; जैसे, "**हाय**! अब मैं क्या करूँ!" "**हैं**! यह क्या कहते हो!" इन वाक्यों में "हाय" दुःख और "हैं" आश्चर्य तथा क्रोध सूचित करता है; और जिन वाक्यों में ये शब्द हैं, उनसे इनका कोई संबंध नहीं है।

२०८—भिन्न भिन्न मनोविकार सूचित करने के लिए भिन्न भिन्न विस्मयादि-बोधक उपयोग में आते हैं; जैसे,

हर्षबोधक—आहा! वाह वा! धन्य धन्य! शाबाश! जय! जयति!

शोकबोधक—आह! ऊह! हा हा! हाय! दइया रे! बाप रे! त्राहि त्राहि! राम राम! हा राम!

---

* एक प्रकार की उपमा।

आश्चर्यबोधक—वाह ! हैं ! ऐं ! ओहो ! वाह वाह ! क्या !

अनुमोदनबोधक—ठीक ! वाह ! अच्छा ! शाबाश ! हाँ हाँ ! भला !

तिरस्कारबोधक—छिः ! हट ! अरे ! दूर ! धिक् ! चुप !

स्वीकारबोधक—हाँ ! जी हाँ ! अच्छा ! जी ! ठीक ! बहुत अच्छा !

संबोधनद्योतक—अरे ! रे ! (छोटों के लिए), अजी लो ! हे ! हो ! क्या ! अहो ! क्यों !

[सूचना—स्त्री के लिए "अरे" का रूप "अरी" और "रे" का रूप "री" होता है। आदर और बहुत्व के लिए दोनों लिङ्गों में "अहो", "अजी" आते हैं। "सत्य-हरिश्चंद्र" में स्त्रीलिंग संज्ञा के साथ "रे" आया है; जैसे, "वाह रे ! महानुभावता !" यह प्रयोग अशुद्ध है।]

२०९—कई एक क्रियाएँ, संज्ञाएँ, विशेषण और क्रिया-विशेषण भी विस्मयादि-बोधक हो जाते हैं; जैसे, भगवान् ! राम राम ! अच्छा ! लो ! हट ! चुप ! क्यों ! खैर !

दूसरा भाग

शब्द-साधन

दूसरा परिच्छेद

रूपांतर

पहला अध्याय

लिङ्ग

२१०—संज्ञा में **लिंग**, **वचन** और **कारक** के कारण रूपांतर होता है।

२११—संज्ञा के जिस रूप से वस्तु की (पुरुष वा स्त्री) जाति का बोध होता है, उसे **लिंग** कहते हैं। हिंदी में दो **लिंग** होते हैं—(१) पुल्लिंग (२) स्त्रीलिंग।

२१२—जिस संज्ञा से (यथार्थ वा कल्पित) पुरुषत्व का बोध होता है, उसे **पुल्लिंग** कहते हैं; जैसे, लड़का, बैल, पेड़, नगर। इन उदाहरणों में "लड़का" और "बैल" यथार्थ पुरुषत्व सूचित करते हैं; और "पेड़" तथा "नगर" से कल्पित पुरुषत्व का बोध होता है, इसलिए ये सब शब्द पुल्लिंग हैं।

२१३—जिस संज्ञा से (यथार्थ वा कल्पित) स्त्रीत्व का बोध होता है, उसे **स्त्रीलिंग** कहते हैं; जैसे, लड़की, गाय, लता, पुरी। इन उदाहरणों में "लड़की" और "गाय" से यथार्थ स्त्रीत्व का और "लता" तथा "पुरी" से कल्पित स्त्रीत्व का बोध होता है इसलिए ये शब्द स्त्रीलिंग हैं।

लिंग-निर्णय

२१४—हिंदी में लिंग-निर्णय दो प्रकार से किया जा सकता है—(१) शब्द के अर्थ से और (२) उसके रूप से। बहुधा प्राणिवाचक शब्दों का लिंग **अर्थ** के अनुसार और कई एक अप्राणि-वाचक शब्दों का लिंग **रूप** के अनुसार निश्चित करते हैं। शेष शब्दों का लिंग केवल व्यवहार के अनुसार माना जाता है।

२१५—जिन प्राणिवाचक संज्ञाओं से जोड़े का ज्ञान होता है, उनमें पुरुषबोधक संज्ञाएँ पुल्लिंग और स्त्रीबोधक संज्ञाएँ स्त्रीलिंग होती हैं; जैसे, पुरुष, घोड़ा, मोर पुल्लिंग हैं; और स्त्री, घोड़ी, मोरनी स्त्रीलिंग हैं।

अपवाद*—"संतान" और "सवारी" (यात्री) स्त्रीलिंग हैं।

२१६—कई एक मनुष्येतर प्राणिवाचक संज्ञाओं से दोनों जातियों का बोध होता है; पर वे व्यवहार के अनुसार नित्य पुल्लिंग वा स्त्रीलिंग होती हैं। उन्हें **एक-लिंग** कहते हैं। उदा०—

---

*नियम-विरुद्ध शब्द।

पु०—पक्षी, उल्लू, कौआ, भेड़िया, चीता, खटमल, केचुआ।

स्त्री०—चील, कोयल, बटेर, मैना, गिलहरी, जोंक, तितली।

(क) प्राणियों के समुदाय-वाचक नाम भी व्यवहार के अनुसार पुल्लिंग वा स्त्रीलिंग होते हैं; जैसे—

पु०—समूह, झुंड, कुटुम्ब, संघ, दल, मंडल।

स्त्री०—भीड़, फौज, सभा, प्रजा, सरकार, टोली।

२१७—कोई कोई अप्राणिवाचक संज्ञाएँ दोनों लिंगों में आती हैं। इन्हें **उभय-लिंग** कहते हैं। उदा०—कलम, गेंद, चलन, पुस्तक, समाज।

२१८—अब अप्राणिवाचक संज्ञाओं के **रूप** के अनुसार लिंग-निर्णय करने के कुछ नियम लिखे जाते हैं। हिंदी में संस्कृत और उर्दू शब्द भी आते हैं, इसलिए इन भाषाओं के शब्दों का अलग विचार करने में सुभीता होगा।

१—हिंदी शब्द

पुल्लिंग

(अ) ऊनवाचक* संज्ञाओं को छोड़ शेष आकारांत संज्ञाएँ; जैसे, कपड़ा, गन्ना, पैसा, पहिया, आटा, चमड़ा।

(आ) जिन भाववाचक संज्ञाओं के अंत में ना, आव, पन वा पा होता है; जैसे, आना, गाना, बहाव, चढ़ाव, बड़प्पन, बुढ़ापा।

(इ) कृदंत की आनांत संज्ञाएँ; जैसे, लगान, मिलान, खानपान, नहान, उठान।

---

*हीनता सूचित करनेवाली।

(ई) कुछ अकारांत संज्ञाएँ; जैसे, घर, पत्थर, दुःख, प्रेम, शरीर।

स्त्रीलिंग

(अ) ईकारांत संज्ञाएँ; जैसे, नदी, चिट्ठी, रोटी, टोपी, उदासी।

अप०—पानी, घी, जी, मोती, दही, मही।

(आ) ऊनवाचक याकारांत संज्ञाएँ; जैसे, फुड़िया, खटिया, डिबिया, पुड़िया, ठिलिया।

(इ) तकारांत संज्ञाएँ; जैसे, रात, बात, लात, छत, भीत, पत।

अप०—भात, खेत, सूत, गात, दाँत।

(ई) ऊकारांत संज्ञाएँ; जैसे, बालू, लू, दारू, ब्यालू, झाड़ू।

अप०—आँसू, आलू, रतालू, टेसू।

(उ) सकारांत संज्ञाएँ; जैसे, प्यास, मिठास, निदास, रास (लगाम), बास, साँस।

अप०—निकास, काँस।

(ऊ) कृदंत की अकारांत संज्ञाएँ; जैसे, लूट, मार, समझ, दौड़, सँभाल, रगड़, चमक, छाप, पुकार।

अप०—खेल, नाच, मेल, बिगाड़, बोल, उतार।

(ऋ) जिन भाववाचक संज्ञाओं के अंत में ट, वट, वा हट, होता है; जैसे, सजावट, बनावट, घबराहट, चिकनाहट, झंझट।

२—संस्कृत शब्द

पुल्लिंग

(अ) जिन संज्ञाओं के अंत में त्र होता है; जैसे, चित्र, क्षेत्र, पात्र, नेत्र, गोत्र, चरित्र, शस्त्र।

(आ) नांत संज्ञाएँ; जैसे, पालन, पोषण, दमन, वचन, नयन।

अप०—'पवन' उभयलिंग है।

(इ) जिन भाववाचक संज्ञाओं के अंत में त्व, त्य, व, र्य होता है; जैसे, सतीत्व, बहुत्व, नृत्य, कृत्य, लाघव, गौरव, माधुर्य।

(ई) जिन शब्दों के अंत में "आर", "आय" वा "आस" हो; जैसे, विकार, विस्तार, अध्याय, उपाय, उल्लास, विकास।

अप०—सहाय, आय।

(उ) "अ" प्रत्ययांत संज्ञाएँ; जैसे, क्रोध, मोह, पाक, त्याग।

अप०—'जय' स्त्रीलिंग और 'विनय' उभयलिंग है।

स्त्रीलिंग

(अ) आकारांत संज्ञाएँ; जैसे, दया, माया, कृपा, लज्जा, क्षमा।

(आ) नाकारांत संज्ञाएँ; जैसे, प्रार्थना, वंदना, प्रस्तावना, वेदना।

(इ) उकारांत संज्ञाएँ; जैसे, वायु, रेणु, रज्जु, जानु, मृत्यु।

(ई) जिनके अंत में "ति" वा "नि" होती है; जैसे, गति, मति, जाति, रीति, हानि, ग्लानि, योनि।

(ई) कुछ अकारांत संज्ञाएँ; जैसे, घर, पत्थर, दुःख, प्रेम, शरीर।

स्त्रीलिंग

(अ) ईकारांत संज्ञाएँ; जैसे, नदी, चिट्ठी, रोटी, टोपी, उदासी।

अप०—पानी, घी, जी, मोती, दही, मही।

(आ) ऊनवाचक याकारांत संज्ञाएँ; जैसे, फुड़िया, खटिया, डिबिया, पुड़िया, ठिलिया।

(इ) तकारांत संज्ञाएँ; जैसे, रात, बात, लात, छत, भीत, पत।

अप०—भात, खेत, सूत, गात, दाँत।

(ई) ऊकारांत संज्ञाएँ; जैसे, बालू, लू, दारू, ब्यालू, झाड़ू।

अप०—आँसू, आलू, रतालू, टेसू।

(उ) सकारांत संज्ञाएँ; जैसे, प्यास, मिठास, निदास, रास (लगाम), बास, साँस।

अप०—निकास, काँस।

(ऊ) कृदंत की अकारांत संज्ञाएँ; जैसे, लूट, मार, समझ, दौड़, सँभाल, रगड़, चमक, छाप, पुकार।

अप०—खेल, नाच, मेल, बिगाड़, बोल, उतार।

(ऋ) जिन भाववाचक संज्ञाओं के अंत में ट, वट, वा हट, होता है; जैसे, सजावट, बनावट, घबराहट, चिकनाहट, झंझट।

२—संस्कृत शब्द

पुल्लिंग

(अ) जिन संज्ञाओं के अंत में त्र होता है; जैसे, चित्र, क्षेत्र, पात्र, नेत्र, गोत्र, चरित्र, शस्त्र।

(आ) नांत संज्ञाएँ; जैसे, पालन, पोषण, दमन, वचन, नयन।

अप०—'पवन' उभयलिंग है।

(इ) जिन भाववाचक संज्ञाओं के अंत में त्व, त्य, व, र्य होता है; जैसे, सतीत्व, बहुत्व, नृत्य, कृत्य, लाघव, गौरव, माधुर्य।

(ई) जिन शब्दों के अंत में "आर", "आय" वा "आस" हो; जैसे, विकार, विस्तार, अध्याय, उपाय, उल्लास, विकास।

अप०—सहाय, आय।

(उ) "अ" प्रत्ययांत संज्ञाएँ; जैसे, क्रोध, मोह, पाक, त्याग।

अप०—'जय' स्त्रीलिंग और 'विनय' उभयलिंग है।

स्त्रीलिंग

(अ) आकारांत संज्ञाएँ; जैसे, दया, माया, कृपा, लज्जा, क्षमा।

(आ) नाकारांत संज्ञाएँ; जैसे, प्रार्थना, वंदना, प्रस्तावना, वेदना।

(इ) उकारांत संज्ञाएँ; जैसे, वायु, रेणु, रज्जु, जानु, मृत्यु।

(ई) जिनके अंत में "ति" वा "नि" होती है; जैसे, गति, मति, जाति, रीति, हानि, ग्लानि, योनि।

(उ) "ता" प्रत्ययांत भाववाचक संज्ञाएँ; जैसे, नम्रता, लघुता, सुन्दरता, प्रभुता, जड़ता।

(ऊ) इकारांत संज्ञाएँ; जैसे, विधि (रीति), परिधि, राशि, रात्रि, अग्नि (आग), छवि, केलि, रुचि।

अप०—वारि, जलधि, पाणि, गिरि, आदि।

३—उर्दू शब्द

पुल्लिंग

(अ) जिसके अंत में "आब" होता है; जैसे, गुलाब, जुलाब, हिसाब, जवाब, कबाब।

अप०—शराब, मिहराब, किताब, कमखाब।

(आ) जिनके अंत में "आर" या "आन" होता है; जैसे, बाजार, इकरार, इश्तहार, इनकार, अहसान, मकान।

अप०—दूकान, सरकार, (शासक-वर्ग), तकरार।

(इ) जिनके अंत में "ह" होता है। हिंदी में "ह" बहुधा आ होकर अंत्य स्वर में मिल जाता है; जैसे, परदा, गुस्सा, किस्सा, रास्ता, चश्मा, तमगा (तगमा)।

अप०—दफा।

स्त्रीलिंग

(अ) ईकारांत भाववाचक संज्ञाएँ; जैसे, गरीबी, गरमी, सरदी, बीमारी, चालाकी।

(आ) शकारांत संज्ञाएँ; जैसे, नालिश, कोशिश, लाश, तलाश।

अप०—ताश, होश।

(इ) तकारांत संज्ञाएँ; जैसे, दौलत, कसरत, अदालत, हजामत।

अप०—शरबत, दस्तखत, बंदोबस्त, दरख्त।

(ई) आकारांत संज्ञाएँ; जैसे, हवा, दवा, सजा, जमा, दुनिया।

अप०—दगा।

(उ) "तफईल" के वजन की संज्ञाएँ; जैसे, तसवीर, तामील, जागीर, तहसील, तफसील।

अप०—तावीज।

२१६—संस्कृत के पुल्लिंग, वा नपुंसक लिंग शब्द हिंदी में बहुधा पुल्लिंग, और स्त्रीलिंग शब्द बहुधा स्त्रीलिंग होते हैं। तथापि कई एक तत्सम और तद्भव शब्दों का मूल लिंग हिंदी में बदल गया है; जैसे—

तत्सम शब्द

शब्द	सं० लिं०	हिं० लिं०
अग्नि (आग)	पु०	स्त्री०
आत्मा	पु०	उभय०
आयु	न०	स्त्री०
जय	,,	,,
तारा (नक्षत्र)	स्त्री०	पु०
देवता	,,	,,

तद्भव शब्द

तत्सम	सं० लिं०	तद्भव	हिं० लिं०
औषध	पु०	औषधि	स्त्री०
औषधि	स्त्री०		

तत्सम	सं० लिं०	तद्भव	हिं० लिं०
शारथ	पु०	सौंह	स्त्री०
बाहु	”	बाँह	”
बिंदु	”	बूँद	”

२२०—अँगरेजी शब्दों के संबंध में लिंग-निर्णय के लिए बहुधा **रूप** और **अर्थ**, दोनों का विचार किया जाता है।

(अ) कुछ शब्दों को उसी अर्थ के हिंदी शब्दों का लिंग प्राप्त हुआ है; जैसे—

कंपनी—मंडली—स्त्री०	नंबर—अंक—पु०
कोट—अँगरखा—पु०	कमेटी—सभा—स्त्री०
बूट—जूता—पु०	लेक्चर—व्याख्यान—पु०

(आ) कई एक शब्द आकारांत होने के कारण पुल्लिंग और ईकारांत होने के कारण स्त्रीलिंग हुए हैं; जैसे—

पु०—सोडा, डेलटा, केमरा।

स्त्री०—चिमनी, गिनी, म्युनिसिपैलटी, लायब्रेरी।

२२१—अधिकांश सामासिक शब्दों का लिंग अंत्य शब्द के लिंग के अनुसार होता है; जैसे, रसोई-घर (पु०), धर्म-शाला (स्त्री०), माँ-बाप (पु०)।

२२२—सभा, पत्र, पुस्तक और स्थान के मुख्य नामों का लिंग बहुधा शब्द के **रूप** के अनुसार होता है; जैसे—

“महासभा” (स्त्री०), “महामंडल” (पु०), “मर्यादा” (स्त्री०), “प्रताप” (पु०), “रामकहानी” (स्त्री०), “रघुवंश” (पु०), “दिल्ली” (स्त्री०), “आगरा” (पु०)।

स्त्री-प्रत्यय

२२३—अब उन विकारों का वर्णन किया जाता है जो संज्ञाओं में लिंग के कारण होते हैं। हिंदी में पुल्लिंग से स्त्रीलिंग बनाने के लिए नीचे लिखे प्रत्यय आते हैं—

ई, इया, इन, नी, आनी, आइन, आ।

१—हिंदी शब्द

२२४—कई एक प्राणिवाचक और संबंधवाचक आकारांत पुल्लिंग संज्ञाओं के अंत्य स्वर के बदले "ई" लगाई जाती है; जैसे—

लड़का—लड़की	घोड़ा—घोड़ी
बेटा—बेटी	बकरा—बकरी
काका—काकी	नाना—नानी
मामा—मामी	साला—साली

(अ) निरादर या प्रेम में कहीं कहीं "ई" के बदले "इया" आता है; और यदि अंत्याक्षर द्वित्व हो, तो पहले व्यंजन का लोप हो जाता है; जैसे—

कुत्ता—कुतिया	बुड्ढा—बुढ़िया
बच्छा—बछिया	बेटा—बिटिया

२२५—कई एक वर्णवाचक तथा व्यवसायवाचक और कुछ प्राणिवाचक संज्ञाओं के अंत्य स्वर में "इन" लगाया जाता है; जैसे—

सुनार—सुनारिन	नाती—नातिन	लुहार—लुहारिन
अहीर—अहीरिन	धोबी—धोबिन	बाव—बाविन
तेली—तेलिन	कुँजड़ा—कुँजड़िन	साँप—साँपिन

(अ) कई एक संज्ञाओं में "नी" लगती है; जैसे—

ऊँट—ऊँटनी	बाघ—बाघनी	हाथी—हथनी
मोर—मोरनी	रीछ—रीछनी	सिंह—सिंहनी
टहलुआ—टहलनी	हिंदू—हिंदूनी	जाट—जाटनी

२२६—उपनाम-वाचक पुल्लिंग शब्दों के अंत में "आइन" आदेश होता है; और यदि आदि अक्षर का स्वर 'आ' हो वो उसे ह्रस्व कर देते हैं; जैसे—

पाँड़े—पँड़ाइन	बाबू—बबुआइन	दूबे—दुबाइन
ठाकुर—ठकुराइन	पाठक—पठकाइन	बनिया—बनियाइन
मिसिर—मिसिराइन	लाला—ललाइन	सुकुल—सुकुलाइन

(अ) कई एक शब्दों के अंत में "आनी" लगाते हैं; जैसे—

खत्री—खत्रानी	देवर—देवरानी	सेठ—सेठानी
जेठ—जिठानी	मेहतर—मेहतरानी	चौधरी—चौधरानी

२२७—कोई कोई पुल्लिंग शब्द स्त्रीलिंग शब्दों में प्रत्यय लगाने से बनते हैं; जैसे—

भेड़—भेड़ा	बहिन—बहनोई	राँड़—रँडुआ
भैंस—भैंसा	ननद—ननदोई	जीजी—जीजा

२२८—कई एक स्त्री-प्रत्ययांत (और स्त्रीलिंग) शब्द अर्थ की दृष्टि से केवल स्त्रियों के लिए आते हैं; इसलिए उनके

जोड़े के पुल्लिंग शब्द भाषा में प्रचलित नहीं हैं; जैसे, सती, गर्भवती, सौत, सुहागिन, अहिवाती, धाय।

२—संस्कृत शब्द

२२९—कुछ व्यंजनांत पुल्लिंग संज्ञाओं में "ई" प्रत्यय लगता है; जैसे—

हिं०	सं०—मू०	स्त्री०	हिं०	सं०—मू०	स्त्री०
राजा	राजन्	राज्ञी	विद्वान्	विद्वस्	विदुषी
युवा	युवन्	युवती	भगवान्	भगवत्	भगवती
श्रीमान्	श्रीमत्	श्रीमती	हितकारी	हितकारिन्	हितकारिणी

२३०—कई एक अकारांत संज्ञाओं में भी; जैसे—

ब्राह्मण—ब्राह्मणी	सुंदर—सुंदरी
पुत्र—पुत्री	गौर—गौरी
देव—देवी	पंचम—पंचमी
कुमार—कुमारी	नद—नदी

२३१—कई एक संज्ञाओं और विशेषणों में "आ" प्रत्यय लगाया जाता है; जैसे—

सुत—सुता	पंडित—पंडिता
बाल—बाला	शिव—शिवा
प्रिय—प्रिया	शूद्र—शूद्रा

२३२—किसी किसी देवता के नाम के आगे "आनी" प्रत्यय लगाया जाता है; जैसे—

भव—भवानी	वरुण—वरुणानी
रुद्र—रुद्राणी	इंद्र—इंद्राणी

२३३—किसी किसी शब्द के दो दो वा तीन तीन स्त्री-लिंग रूप होते हैं; जैसे—

उपाध्याय—उपाध्यायानी, उपाध्यायी (उसकी स्त्री); उपाध्याया (स्त्री-शिक्षिका)। आचार्य—आचार्या (वेदमंत्र सिखानेवाली); आचार्याणी (आचार्य की स्त्री)। क्षत्रिय—क्षत्रियी (उसकी स्त्री); क्षत्रिया, क्षत्रियाणी (उस वर्ण की स्त्री)।

३—उर्दू शब्द

२३४—अधिकांश उर्दू पुल्लिंग शब्दों में हिंदी प्रत्यय लगाये जाते हैं; जैसे—

ई—शाहजादा—शाहजादी; मुर्गा—मुर्गी

नी—शेर—शेरनी

आनी—मेहतर—मेहतरानी; मुल्ला—मुल्लानी

२३५—कई एक अरबी शब्दों में अरबी प्रत्यय "ह" जोड़ा जाता है जो हिंदी में "आ" हो जाता है; जैसे—

वालिद—वालिदा	खालू—खाला
मलिक—मलिका	साहब—साहबा

२३६—कुछ अँगरेज़ी शब्दों में 'इन' लगाते हैं; जैसे—

मास्टर—मास्टरिन, डाक्टर—डाक्टरिन, इंस्पेक्टर—इंस्पेक्टरिन

२३७—हिंदी में कई एक पुल्लिंग शब्दों के स्त्रीलिंग शब्द दूसरे ही होते हैं; जैसे—

राजा—रानी	पुरुष—स्त्री
पिता—माता	मर्द, आदमी—औरत
ससुर—सास	वर—कन्या
भाई—बहिन	बैल—गाय
नर—मादा	साहब—मेम (अँगरेज़ी)

२३८—एक-लिंग प्राणिवाचक शब्दों में पुरुष वा स्त्री जाति का भेद करने के लिए उनके पूर्व "पुरुष" और "स्त्री" तथा मनुष्येतर प्राणिवाचक शब्दों के पहले क्रमशः "नर" और "मादा" (उर्दू) लगाते हैं; जैसे, पुरुष-छात्र, स्त्री-छात्र, नर-चील, मादा-चील, नर-भेड़िया, मादा-भेड़िया। "मादा" शब्द को कोई कोई भ्रम से "मादी" बोलते हैं।

दूसरा अध्याय

वचन

२३९—संज्ञा और दूसरे विकारी शब्दों के जिस रूप से संज्ञा का बोध होता है, उसे **वचन** कहते हैं। हिंदी में दो वचन होते हैं—(१) एकवचन और (२) बहुवचन।

२४०—संज्ञा के जिस रूप से एक वस्तु का बोध होता है, उसे **एकवचन** कहते हैं; जैसे, लड़का, कपड़ा, टोपी, रंग, रूप।

२४१—संज्ञा के जिस रूप से एक से अधिक वस्तुओं का बोध होता है, उसे **बहुवचन** कहते हैं; जैसे, लड़के, कपड़े, टोपियाँ, रंगों में, रूपों से।

२४२—आदर के लिए भी बहुवचन आता है; जैसे, "राजा के बड़े **बेटे** आये हैं।" "कण्व **ऋषि** तो ब्रह्मचारी हैं।" "तुम **बच्चे** हो।"

२४३—हिंदी में संज्ञाओं के बहुवचन के दो रूप होते हैं—(१) विभक्ति-रहित और (२) विभक्ति-सहित। यहाँ विभक्ति-रहित बहुवचन बनाने के नियम दिये जाते हैं। (अं०—२६०)।

हिंदी और संस्कृत शब्द

(क) पुल्लिंग

२४४—हिंदी आकारांत पुल्लिंग शब्दों का बहुवचन बनाने के लिए अंत्य "आ" के स्थान में "ए" लगाते हैं; जैसे—

लड़का—लड़के	लोटा—लोटे	बच्चा—बच्चे
घीघा—घीघे	घोड़ा—घोड़े	कपड़ा—कपड़े

अप०—(१) साला, भानजा, भतीजा, बेटा, पोता आदि शब्दों को छोड़कर, शेष संबंधवाचक, उपनामवाचक और प्रतिष्ठावाचक आकारांत पुल्लिंग शब्दों का रूप दोनों वचनों में एक ही रहता है; जैसे—काका, आजा, मामा, लाला, दादा, नाना, पंडा (उपनाम), सूरमा।

[सूचना—"बाप-दादा" शब्द का रूपांतर वैकल्पिक है; जैसे, "इनके बाप-दादे हमारे बाप दादे के आगे हाथ जोड़कर बातें किया करते

थे।" "बाप-दादे जो कर गये हैं, वही करना चाहिए।" "जिनके बाप-दादा भेड़ की आवाज़ सुनकर डर जाते थे।" मुखिया, अगुआ और पुरखा शब्दों के भी रूप वैकल्पिक हैं।]

अप०—(२) संस्कृत की ऋकारांत और नकारांत संज्ञाएँ, जो हिंदी में आकारांत हो जाती हैं, बहुवचन में अविकृत रहती हैं; जैसे, कर्त्ता, पिता, योद्धा, युवा, आत्मा, देवता, जामाता।

२४५—हिंदी आकारांत पुल्लिंग शब्दों को छोड़ शेष हिंदी और संस्कृत पुल्लिंग शब्द दोनों वचनों में एक-रूप रहते हैं; जैसे—

व्यंजनांत संज्ञाएँ—हिंदी में व्यंजनांत संज्ञाएँ नहीं हैं। संस्कृत की अधिकांश व्यंजनांत संज्ञाएँ हिंदी में अकारांत पुल्लिंग हो जाती हैं; जैसे, मनस् = मन, नामन् = नाम, कुमुद् = कुमुद, पथिन् = पंथ।

अकारांत—(हिंदी) घर—घर। (संस्कृत) बालक—बालक।

इकारांत—हिंदी शब्द नहीं हैं। ,, मुनि—मुनि।

ईकारांत—(हिंदी) भाई—भाई ,, पक्षी—पक्षी।

उकारांत—हिंदी-शब्द नहीं हैं। ,, साधु—साधु।

ऊकारांत—(हिंदी) डाकू—डाकू। संस्कृत-शब्द हिंदी में नहीं हैं।

ऋकारांत—हिंदी शब्द नहीं है। संस्कृत-शब्द हिंदी में आकारांत हो जाते हैं।

एकारांत—(हिंदी) चौबे—चौबे। संस्कृत-शब्द हिंदी में नहीं हैं।

ओकारांत—(हिंदी) रासो—रासो। संस्कृत-शब्द हिंदी में नहीं हैं।

औकारांत—(हिंदी)—जौ—जौ। संस्कृत-शब्द हिंदी में नहीं हैं।

सानुस्वार ओकारांत—(हिंदी) कोदों—कोदों। संस्कृत-शब्द हिंदी में नहीं हैं।

(ख) स्त्रीलिंग

२४६—अकारांत स्त्रीलिंग शब्दों का बहुवचन अंत्य स्वर के बदले "एँ" करने से बनता है; जैसे—

बहिन—बहिनें	आँख—आँखें
गाय—गायें	रात—रातें
बात—बातें	झील—झीलें

२४७—इकारांत और ईकारांत संज्ञाओं में "ई" को ह्रस्व करके अंत्य स्वर के पश्चात् "याँ" जोड़ते हैं; जैसे—

तिथि—तिथियाँ	टोपी—टोपियाँ
शक्ति—शक्तियाँ	थाली—थालियाँ
रीति—रीतियाँ	रानी—रानियाँ

(अ) याकारांत (ऊनवाचक) संज्ञाओं के अंत में केवल अनुस्वार लगाया जाता है; जैसे—

लठिया—लठियाँ	डिबिया—डिबियाँ
लुटिया—लुटियाँ	गुड़िया—गुड़ियाँ
बुढ़िया—बुढ़ियाँ	खटिया—खटियाँ

२४८—शेष स्त्रीलिंग शब्दों में अंत्य स्वर के परे एँ लगाते हैं और "ऊ" को ह्रस्व कर देते हैं; जैसे—

लता—लताएँ	वस्तु—वस्तुएँ

कथा—कथाएँ	बहू—बहुएँ
माता—माताएँ	लू—लुएँ

(क) सानुस्वार ओकारांत और औकारांत संज्ञाएँ बहु-वचन में बहुधा अविकृत रहती हैं; जैसे, दौं, जोखों, सरसों, गौं। हिंदी में ये शब्द बहुत कम हैं।

२—उर्दू शब्द

२४९—हिंदी-गत उर्दू शब्दों का बहुवचन बनाने के लिए उनमें बहुधा हिंदी प्रत्यय लगाये जाते हैं; जैसे, शाहजादा—शाहजादे, बेगम—बेगमें। उर्दू भाषा के मूल बहुवचन के कुछ नियम यहाँ लिखे जाते हैं—

(१) फारसी प्राणिवाचक संज्ञाओं का बहुवचन बहुधा "आन" लगाने से बनता है; जैसे, साहब—साहबान, मालिक—मालिकान, काश्तकार—काश्तकारान।

(२) फारसी अप्राणिवाचक संज्ञाओं का बहुवचन (अरबी की नकल पर) बहुधा "आत" लगाकर बनाते हैं; जैसे, कागज—कागजात, दिह (गांव)—दिहात।

(३) कई एक उर्दू आकारांत पुल्लिंग शब्द, संस्कृत और हिंदी शब्द के समान, बहुवचन में अविकृत रहते हैं; जैसे, सौदा, दरिया, मिर्या।

२५०—जिन मनुष्यवाचक पुल्लिंग शब्दों के रूप दोनों वचनों में एक से होते हैं, उनके बहुवचन में बहुधा "लोग" शब्द का प्रयोग करते हैं; जैसे, "ये **ऋषि लोग** आपके सम्मुख चले आते हैं।" "**आर्य लोग** सूर्य के उपासक थे।"

(क) "लोग" शब्द के सिवा गण, जाति, जन, वर्ग आदि समूह-वाचक संस्कृत-शब्द भी बहुवचन के अर्थ में आते हैं।

२५१—बहुधा जातिवाचक संज्ञाएँ ही बहुवचन में आती हैं; परंतु जब व्यक्तिवाचक और भाववाचक संज्ञाओं का प्रयोग जातिवाचक संज्ञा के समान होता है, तब उनका भी बहुवचन होता है; जैसे, "कहु रावण, **रावण** जग केते।" "उठती बुरी हैं **भावनाएँ** हाय! मम हृद्धाम में।"

२५२—जब द्रव्यवाचक संज्ञाओं से किसी द्रव्य* की भिन्न भिन्न जातियाँ सूचित करने की आवश्यकता होती है, तब उन संज्ञाओं का प्रयोग बहुवचन में होता है; जैसे, "आजकल बाज़ार में कई **तेल** बिकते हैं।" "दोनों **सोने** चोखे हैं।"

२५३—कई एक शब्द (बहुत्व की भावना के कारण) बहुधा बहुवचन ही में आते हैं; जैसे, समाचार, प्राण, दाम, लोग, होश, हिज्जे।

तीसरा अध्याय

कारक

२५४—संज्ञा (या सर्वनाम) के जिस रूप से उसका संबंध वाक्य के किसी दूसरे शब्द के साथ प्रकाशित होता है, उस रूप

*जो वस्तु केवल ढेर में तौली या नापी जाती है।

को **कारक** कहते हैं; जैसे, "रामचंद्रजी ने खारी जल के समुद्र पर बंदरों से पुल बँधवा दिया।"

इस वाक्य में "रामचंद्रजी ने", "समुद्र पर", "बंदरों से" और "पुल" संज्ञाओं के रूपांतर हैं, जिनके द्वारा इन संज्ञाओं का संबंध "बँधवा दिया" क्रिया के साथ सूचित होता है। "जल के" "जल" संज्ञा का रूपांतर है और उससे "जल" का संबंध "समुद्र" से जाना जाता है। इसलिए "रामचंद्रजी ने", "समुद्र पर", "जल के", "बंदरों से" और "पुल" संज्ञाओं के कारक कहलाते हैं। कारक सूचित करने के लिए संज्ञा या सर्वनाम के आगे जो प्रत्यय लगाये जाते हैं, उन्हें **विभक्तियाँ** कहते हैं। विभक्ति के योग से बने हुए **विभक्त्यंत** शब्द वा **पद** कहलाते हैं।

२५५—हिंदी में आठ कारक हैं। इनके नाम, विभक्तियाँ और लक्षण नीचे दिये जाते हैं—

कारक	विभक्तियाँ
(१) कर्त्ता	(प्रधान)०, (अप्रधान) ने
(२) कर्म	को
(३) करण	से
(४) संप्रदान	को
(५) अपादान	से
(६) संबंध	का-के-की
(७) अधिकरण	में, पर
(८) संबोधन	हे, अजी, अहो, अरे

(१) संज्ञा के जिस रूप से वाक्य की क्रिया के करने-वाले का बोध होता है, उसे **कर्त्ता कारक** कहते हैं; जैसे, **लड़का** सोता है। **नौकर ने** दरवाज़ा खोला।

[सूचना—"ने" के प्रयोग के लिए अं०—३०४ देखो।]

(२) जिस वस्तु पर क्रिया के व्यापार का फल पड़ता है, उसे सूचित करनेवाले संज्ञा के रूप को **कर्म कारक** कहते हैं; जैसे, "लड़का **पत्थर** फेंकता है।" "मालिक ने **नौकर को** बुलाया।" जब कर्म अप्राणिवाचक वा अनिश्चित होता है, तब "को" चिह्न बहुधा लुप्त रहता है।

(३) **करण कारक** संज्ञा के उस रूप को कहते हैं जिससे क्रिया के साधन का बोध होता है; जैसे, "सिपाही चोर को **रस्सी से** बाँधता है।" "लड़के ने **हाथ से** फल तोड़ा।"

(४) जिस वस्तु के लिए कोई क्रिया की जाती है, उसकी वाचक संज्ञा के रूप को **संप्रदान कारक** कहते हैं; जैसे, "राजा ने **ब्राह्मण को** धन दिया।" "लड़का **नहाने को** गया है।"

(५) **अपादान कारक** संज्ञा के उस रूप को कहते हैं जिससे क्रिया के विभाग की अवधि सूचित होती है; जैसे, "**पेड़ से** फल गिरा।" "गंगा **हिमालय से** निकलती है।"

(६) संज्ञा के जिस रूप से उसकी वाच्य वस्तु का संबंध किसी दूसरी वस्तु के साथ सूचित होता है, उस रूप को **संबंध कारक** कहते हैं; जैसे, **राजा का** महल, **लड़के की**

पुस्तक। संबंध कारक का रूप संबंधी शब्द के लिंग-वचन-कारक के अनुसार बदलता है। (अं०—२८२)

(७) संज्ञा का वह रूप जिससे क्रिया के आधार का बोध होता है, **अधिकरण कारक** कहलाता है; जैसे, "सिंह **वन में** रहता है।" "बंदर **पेड़ पर** चढ़ रहे हैं।"

(८) संज्ञा के जिस रूप से किसी को चेताना या पुकारना सूचित होता है, उसे **संबोधन कारक** कहते हैं; जैसे, **हे नाथ** ! मेरे अपराधों को क्षमा करना।" "**अरे लड़के**, इधर आ।"

२५६—हिंदी में अधिकरण-कारक की विभक्तियों के साथ बहुधा संबंध वा अपादान-कारक की विभक्ति आती है; जैसे, "हमारे पाठकों **में से** बहुतेरों ने।" "तट **पर से**।" "कुएँ **में का** मेंढक।"

२५७—कोई कोई विभक्तियाँ कुछ क्रिया-विशेषणों में भी पाई जाती हैं; जैसे—

को—कहाँ को, वहां को, आगे को। से—कहाँ से, वहाँ से, आगे से।
का—कहाँ का, जहाँ का, कब का। पर—वहाँ पर, जहाँ पर।

संज्ञाओं की कारक-रचना

२५८—विभक्तियों के योग के पहले संज्ञाओं का जो रूपांतर होता है, उसे **विकृत रूप** कहते हैं; जैसे, "घोड़ा" शब्द के आगे "ने" विभक्ति के योग से एकवचन में "घोड़े" और

बहुवचन में "घोड़ों" हो जाता है। इसलिए "घोड़े" और "घोड़ों" विकृत रूप हैं।

२५९—एकवचन में विकृत रूप का प्रत्यय "ए" है जो केवल हिंदी और उर्दू (तद्भव) आकारांत पुल्लिंग संज्ञाओं में लगाया जाता है; जैसे, लड़का—लड़के ने; घोड़ा—घोड़े ने; सोना—सोने का; परदा—परदे में; अंधा—हे अंधे।

(अ) संबोधन कारक के एकवचन में "बेटा" शब्द अविकृत रहता है; जैसे, हे बेटा।

२६०—**बहुवचन** में विकृत रूप के प्रत्यय **ओं** और **यों** हैं।

(अ) अकारांत, विकारी आकारांत और हिंदी याकारांत शब्दों के अंत्य स्वर में ओं आदेश* होता है; जैसे, घर—घरों को (पु०), बात—बातों में (स्त्री०), लड़का—लड़कों का (पु०), डिबिया—डिबियों में (स्त्री०)।

(आ) मुखिया, अगुआ, पुरखा और बाप-दादा शब्दों का विकृत रूप विकल्प से (अ) वा (ई) के अनुसार बनता है; जैसे, मुखियों वा मुखियाओं को, अगुओं वा अगुवाओं से, बाप-दादों वा बाप-दादाओं का।

(इ) ईकारांत संज्ञाओं के अंत्य ह्रस्व के पश्चात् "यों" लगाया जाता है; जैसे, मुनि—मुनियों को; हाथी—हाथियों से; शक्ति—शक्तियों का; नदी—नदियों में।

---

*एक अक्षर के स्थान में दूसरे अक्षर का उपयोग।

(ई) शेष शब्दों में अंत्य स्वर के पश्चात् "ओं" आता है; जैसे, राजा—राजाओं को; साधु—साधुओं में; माता—माताओं से; धेनु–धेनुओं का; चौवे–चौवेओं में; जौ–जौओं को।

[सूचना—विकृत रूप के पहले ई और ऊ ह्रस्व हो जाते हैं।

(उ) ओकारांत शब्दों के अंत में केवल अनुस्वार आता है; और सानुस्वार ओकारांत तथा औकारांत संज्ञाओं में कोई रूपांतर नहीं होता; जैसे, रासो—रासों में; कोदों—कोदों से; सरसों—सरसों का।

(ऋ) संबोधन के बहुवचन में 'ओं' और 'यों' का अनुस्वार नहीं रहता; जैसे, लड़को, देवियो।

(क) पुल्लिंग संज्ञाएँ

(१) अकारांत

कारक	एकवचन	बहुवचन
कर्त्ता	बालक	बालक
	बालक ने	बालकों ने
कर्म—संप्रदान	बालक को	बालकों को
करण—अपादान	बालक से	बालकों से
संबंध	बालक का-के-की	बालकों का-के-की
अधिकरण	बालक में	बालकों में
	बालक पर	बालकों पर
संबोधन	हे बालक	हे बालको

(२) आकारांत (विकृत)

कारक	एकवचन	बहुवचन
कर्त्ता	लड़का	लड़के
	लड़के ने	लड़कों ने
कर्म*	लड़के को	लड़कों को
संबोधन	हे लड़के	हे लड़को

(३) आकारांत (अविकृत)

कर्त्ता	राजा	राजा
	राजा ने	राजाओं ने
कर्म	राजा को	राजाओं को
संबोधन	हे राजा	हे राजाओ

(४) आकारांत (वैकल्पिक)

कर्त्ता	बाप-दादा	बाप-दादा वा बाप-दादे
	बाप-दादा ने (दादे ने)	बाप-दादाओं ने (दादों ने)
कर्म	बाप-दादा को (दादे को)	बाप-दादाओं को (दादों को)
संबोधन	हे बाप-दादा (दादे)	हे बाप-दादाओ (दादो)

(५) इकारांत

कर्त्ता	मुनि	मुनि
	मुनि ने	मुनियों ने
कर्म	मुनि को	मुनियों को
संबोधन	हे मुनि	हे मुनियो

---

*शेष रूप इसी प्रकार दूसरी विभक्तियाँ लगाने से बनते हैं ।

(६) ईकारांत

कारक	एकवचन	बहुवचन
कर्त्ता	माली	माली
	माली ने	मालियों ने
कर्म	माली को	मालियों को
संबोधन	हे माली	हे मालियो

(७) उकारांत

कारक	एकवचन	बहुवचन
कर्त्ता	साधु	साधु
	साधु ने	साधुओं ने
कर्म	साधु को	साधुओं को
संबोधन	हे साधु	हे साधुओ

(८) ऊकारांत

कारक	एकवचन	बहुवचन
कर्त्ता	डाकू	डाकू
	डाकू ने	डाकुओं ने
कर्म	डाकू को	डाकुओं को
संबोधन	हे डाकू	हे डाकुओ

(९) एकारांत

कारक	एकवचन	बहुवचन
कर्त्ता	चौबे	चौबे
	चौबे ने	चौबेओं ने
कर्म	चौबे को	चौबेओं को
संबोधन	हे चौबे	हे चौबेओ

(१०) ओकारांत

कारक	एकवचन	बहुवचन
कर्त्ता	रासो	रासो
	रासो ने	रासों ने
कर्म	रासो को	रासों को
संबोधन	हे रासो	हे रासो

(११) औकारांत

कर्त्ता	जौ	जौ
	जौ ने	जौओं ने
कर्म	जौ को	जौओं को
संबोधन	हे जौ	हे जौओ

(१२) सानुस्वार ओकारांत

कर्त्ता	कोदों	कोदों
	कोदों ने	कोदों ने
कर्म	कोदों को	कोदों को
संबोधन	हे कोदों	हे कोदों

(ख) स्त्रीलिंग संज्ञाएँ

(१) अकारांत

कर्त्ता	बहिन	बहिन
	बहिन ने	बहिनों ने
कर्म	बहिन को	बहिनों को
संबोधन	हे बहिन	हे बहिनो

(२) आकारांत (संस्कृत)

कारक	एकवचन	बहुवचन
कर्ता	शाला	शालाएँ
	शाला ने	शालाओं ने
कर्म	शाला को	शालाओं को
संबोधन	हे शाला	हे शालाओ

(३) याकारांत (हिंदी)

कर्त्ता	बुढ़िया	बुढ़ियाँ
	बुढ़िया ने	बुढ़ियों ने
कर्म	बुढ़िया को	बुढ़ियों को
संबोधन	हे बुढ़िया	हे बुढ़ियो

(४) इकारांत

कर्त्ता	शक्ति	शक्तियाँ
	शक्ति ने	शक्तियों ने
कर्म	शक्ति को	शक्तियों को
संबोधन	हे शक्ति	हे शक्तियो

(५) ईकारांत

कर्त्ता	देवी	देवियाँ
	देवी ने	देवियों ने
कर्म	देवी को	देवियों को
संबोधन	हे देवी	हे देवियो

(६) उकारांत

कारक	एकवचन	बहुवचन
कर्त्ता	धेनु	धेनुएँ
	धेनु ने	धेनुओं ने
कर्म	धेनु को	धेनुओं को
संबोधन	हे धेनु	हे धेनुओ

(७) ऊकारांत

कारक	एकवचन	बहुवचन
कर्त्ता	बहू	बहुएँ
	बहू ने	बहुओं ने
कर्म	बहू को	बहुओं को
संबोधन	हे बहू	हे बहुओ

(८) औकारांत

कारक	एकवचन	बहुवचन
कर्त्ता	गौ	गौएँ
	गौ ने	गौओं ने
कर्म	गौ को	गौओं को
संबोधन	हे गौ	हे गौओ

(९) सानुस्वार ओकारांत

कारक	एकवचन	बहुवचन
कर्त्ता	सरसों	सरसों
	सरसों ने	सरसों ने
कर्म	सरसों को	सरसों को
संबोधन	हे सरसों	हे सरसों

(एकवचन के समान)

२६१—विभक्ति के द्वारा संज्ञा (या सर्वनाम) का जो संबंध क्रिया वा दूसरे शब्दों के साथ प्रकाशित होता है, वही संबंध कभी कभी संबंध-सूचक अव्यय के द्वारा भी प्रकाशित होता है; जैसे, "लड़का नहाने **को** गया है" अथवा "नहाने **के लिए** गया है"। तथापि संबंध-सूचक अव्यय एक प्रकार के स्वतंत्र शब्द हैं; इसलिए संबंध-सूचकांत संज्ञाओं को कारक नहीं कहते। इसके सिवा, कुछ विशेष प्रकार के मुख्य संबंधों ही को कारक मानते हैं, औरों को नहीं।

२६२—विभक्तियों के अर्थ में कभी कभी नीचे लिखे संबंध-सूचक अव्यय आते हैं—

कर्म-कारक—प्रति, तईं (पुरानी भाषा में)।
करण-कारक—द्वारा, करके, जरिये, कारण, मारे।
संप्रदान-कारक—लिए, हेतु, निमित्त, अर्थ, वास्ते।
अपादान-कारक—अपेक्षा, बनिस्बत, सामने, आगे, साथ।
अधिकरण-कारक—मध्य, बीच, भीतर, अंदर, ऊपर।

चौथा अध्याय

सर्वनाम का रूपांतर

२६३—संज्ञाओं के समान सर्वनामों में वचन और कारक होते हैं; परंतु लिंग के कारण इनका रूप नहीं बदलता।

२६४—विभक्ति-रहित कर्त्ता-कारक के बहुवचन में पुरुष-वाचक (मैं, तू) और निश्चयवाचक (यह, वह) सर्व-नामों को छोड़कर, शेष सर्वनामों का रूपांतर नहीं होता; जैसे,

एकवचन	बहुवचन	एकवचन	बहुवचन
मैं	हम	आप	आप
तू	तुम	जो	जो
यह	ये	कौन	कौन
वह	वे	क्या	क्या
सो	सो	कोई	कोई
		कुछ	कुछ

२६५—विभक्ति के योग से अधिकांश सर्वनाम दोनों वचनों में विकृत रूप में आते हैं। "कोई" और निजवाचक "आप" की कारक-रचना केवल एकवचन में होती है। "क्या" और "कुछ" का कोई रूपांतर नहीं होता; उनका प्रयोग केवल विभक्ति-रहित कर्त्ता और कर्म में होता है।

२६६—"आप", "कोई", "क्या" और "कुछ" को छोड़कर, शेष सर्वनामों के कर्म और संप्रदान कारकों में "को" के सिवा एक और विभक्ति (एकवचन में "ए" और बहुवचन में "एँ") आती है।

२६७—पुरुष-वाचक सर्वनामों में, संबंध-कारक की "का-के-की" विभक्तियों के बदले "रा-रे-री" आती हैं और निज-वाचक सर्वनाम में "ना-ने-नी" विभक्तियाँ लगाई जाती हैं।

२६८—सर्वनामों में संबोधन-कारक नहीं होता; क्योंकि जिसे पुकारते या चेताते हैं, उसका नाम या उपनाम लेकर ही ऐसा करते हैं।

२६६—पुरुष-वाचक सर्वनामों की कारक-रचना नीचे दी जाती है—

उत्तमपुरुष "मैं"

कारक	एक०	बहु०
कर्त्ता	मैं	हम
	मैंने	हमने
कर्म–संप्रदान	मुझको, मुझे	हमको, हमें
करण–अपादान	मुझसे	हमसे
संबंध	मेरा-रे-री	हमारा-रे-री
अधिकरण	मुझमें	हममें

मध्यमपुरुष "तू"

कारक	एक०	बहु०
कर्त्ता	तू	तुम
	तूने	तुमने
कर्म–संप्रदान	तुझको, तुझे	तुमको, तुम्हें
करण–अपादान	तुझसे	तुमसे
संबंध	तेरा-रे-री	तुम्हारा-रे-री
अधिकरण	तुझमें	तुममें

(अ) पुरुष-वाचक सर्वनामों की कारक-रचना में कर्त्ता को छोड़कर शेष कारकों के एकवचन का विकृत रूप "मैं" का "मुझ" और "तू" का "तुझ" होता है। संबंध-कारक के दोनों वचनों में "मैं" का विकृत रूप क्रमशः "मे" और "हमा", और "तू" का "ते" और "तुम्हा" होता है। विभक्ति-सहित कर्त्ता के दोनों वचनों में और

संबंध-कारक को छोड़, शेष कारकों के बहुवचन में दोनों का रूप अवि-कृत रहता है।

२७०—निजवाचक "आप" की कारक-रचना केवल एकवचन में होती है; परंतु एकवचन के रूप बहुवचन संज्ञा या सर्वनाम के साथ भी आते हैं। इसका विकृत रूप "अपना" है जो संबंध-कारक में आता है और "अप" में संबंध-कारक की "ना" विभक्ति जोड़ने से बना है। इसके साथ "ने" विभक्ति नहीं आती। दूसरी विभक्तियों के योग से इसका रूप हिंदी आकारांत संज्ञाओं के समान "अपने" हो जाता है। कर्त्ता और संबंध-कारक को छोड़ शेष कारकों में विकल्प से "आप" के साथ विभक्तियाँ जोड़ी जाती हैं।

निजवाचक "आप"

कारक	एक०
कर्त्ता	आप
कर्म—संप्रदान	अपने को, आपको
करण—अपादान	अपने से, आपसे
संबंध	अपना—ने—नी
अधिकरण	अपने में, आप में

(अ) कभी कभी "अपना" और "आप" संबंध-कारक को छोड़ शेष कारकों में मिलकर आते हैं; जैसे, अपने-आप, अपने-आपको, अपने-आपसे, अपने-आप में।

(आ) "आप" शब्द का एक रूप "आपस" है जिसका प्रयोग कोई कोई लेखक संज्ञा के समान भी करते हैं; जैसे, "तुम्हारे आपस में अच्छी प्रीति है।"

(इ) "अपना" जब संज्ञा के समान निज लोगों के अर्थ में आता है, तब उसकी कारक-रचना हिंदी आकारांत संज्ञाओं के समान दोनों वचनों में होती है; जैसे, "अपने मात-पिता बिन जग में कोई नहीं अपना पाया।" "वह अपनों के पास गया।"

(ई) कभी कभी "अपना" के बदले "निज" (सर्वनाम) का संबंध-कारक आता है, और कभी कभी दोनों रूप मिलकर आते हैं; जैसे, निज का माल, अपना निज का नौकर।

२७१—"आप" शब्द आदरसूचक भी है। इस अर्थ में उसकी कारक-रचना निजवाचक "आप" से भिन्न होती है। विभक्ति के पहले आदरसूचक "आप" का रूप विकृत नहीं होता। इसका प्रयोग आदरार्थ बहुवचन में होने के कारण बहुत्व का बोध होने के लिए, इसके साथ "लोग" या "सब" लगा देते हैं। इसके साथ "ने" विभक्ति आती है और संबंध-कारक में "का-के-की" विभक्तियाँ लगाई जाती हैं।

आदरसूचक "आप"

कारक	एक० (आदर)	(बहु० संख्या)
कर्त्ता	आप	आप लोग
	आपने	आप लोगों ने
कर्म-संप्र०	आप को	आप लोगों को

कारक	एक० (आदर)	वहु० (संख्या)
संबंध	आपका-के-की	आप लोगों का-के-की

[सूचना—इसके शेष रूप इसी प्रकार विभक्तियों के योग से बनते हैं ।]

२७२—निश्चयवाचक सर्वनामों के दोनों वचनों की कारक-रचना में विकृत रूप आता है । एकवचन में "यह" का विकृत रूप "इस", "वह" का "उस" और "सो" का "तिस" होता है; और बहुवचन में क्रमशः "इन", "उन" और "तिन" आते हैं । इनके विभक्ति-सहित बहुवचन कर्त्ता के अंत्य "न" में विकल्प से "हों" जोड़ा जाता है; और कर्म तथा संप्रदान-कारकों के बहुवचन में "एँ" के पहले "न" में "ह" मिलाया जाता है ।

निकटवर्ती "यह"

कारक	एक०	बहु०
कर्त्ता	यह	ये
	इसने	इनने, इन्होंने
कर्म-संप्रदान	इसको, इसे	इनको, इन्हें
करण-अपादान	इससे	इनसे
संबंध	इसका-के-की	इनका-के-की
अधिकरण	इसमें	इनमें

दूरवर्ती "वह"

कर्त्ता	वह	वे
	उसने	उनने, उन्होंने

कारक	एक०	बहु०
कर्म-संप्रदान	उसको, उसे	उनको, उन्हें

[सूचना—शेष कारक "यह" के अनुसार विभक्तियाँ लगाने से बनते हैं।]

नित्यसंबंधी "सो"

कर्त्ता	सो	सो
	तिसने	तिनने, तिन्होंने
कर्म-संप्रदान	तिसको, तिसे	तिनको, तिन्हें

२७३—संबंधवाचक सर्वनाम "जो" और प्रश्नवाचक सर्वनाम "कौन" के रूप निश्चयवाचक सर्वनामों के अनुसार बनते हैं। "जो" के विकृत रूप दोनों वचनों में क्रमशः "जिस" और "जिन" तथा "कौन" के "किस" और "किन" हैं।

संबंध-वाचक "जो"

कर्त्ता	जो	जो
	जिसने	जिनने, जिन्होंने
कर्म-संप्रदान	जिसको, जिसे	जिनको, जिन्हें

प्रश्नवाचक "कौन"

कर्त्ता	कौन	कौन
	किसने	किनने, किन्होंने
कर्म-संप्रदान	किसको, किसे	किनको, किन्हें

[सू०—यह, वह, सो, जो और कौन के विभक्ति-सहित कर्त्ता-कारक के बहुवचन में जो दो दो रूप हैं, उनमें से दूसरा रूप अधिक शिष्ट समझा जाता है; जैसे, उन्होंने, जिन्होंने ।]

२७४—प्रश्नवाचक सर्वनाम "क्या" की कारक-रचना नहीं होती। यह शब्द इसी रूप में केवल एकवचन (विभक्ति-रहित) कर्त्ता और कर्म में आता है; जैसे, "**क्या** गिरा ?" "तुम **क्या** चाहते हो ?" दूसरे कारकों के एकवचन में "क्या" के बदले व्रज-भाषा के "कहा" सर्वनाम का विकृत रूप "काहे" आता है।

प्रश्नवाचक "क्या"

कारक	एक०
कर्त्ता	क्या
कर्म	क्या
करण—अपादान	काहे से
संप्रदान	काहे को
संबंध	काहे का-के-की
अधिकरण	काहे में

(अ) "काहे से" (अपादान) "काहे को" (संप्रदान) का प्रयोग बहुधा "क्यों" के अर्थ में होता है; जैसे, "तुम यह काहे से कहते हो ?" "लड़का वहाँ काहे को गया ?" "काहे का" का अर्थ "किस चीज़ से बना" है।

२७५—अनिश्चयवाचक सर्वनाम "कोई" यथार्थ में प्रश्न-वाचक सर्वनाम से बना है। इसका विकृत रूप "किसी"

प्रश्नवाचक सर्वनाम "कौन" के विकृत रूप "किस" में अव-धारणबोधक "ई" प्रत्यय लगाने से बना है। "कोई" की कारकरचना केवल एकवचन में होती है, परंतु इसके रूपों की द्विरुक्ति से बहुवचन का बोध होता है।

अनिश्चयवाचक "कोई"

कारक	एक०
कर्त्ता	कोई
	किसी ने
कर्म—संप्रदान	किसी को

[सूचना—कोई कोई वैयाकरण इसके बहुवचन रूप "किन" के नमूने पर "किन्हीं ने", "किन्हीं को" आदि लिखते हैं; पर ये रूप शिष्ट-सम्मत नहीं हैं।]

२७६—अनिश्चयवाचक सर्वनाम "कुछ" की कारक-रचना नहीं होती। "क्या" के समान यह केवल विभक्ति-रहित, कर्त्ता और कर्म के एकवचन में आता है; जैसे, "पानी में **कुछ** है।" "लड़के ने **कुछ** फेंका है।" जब "कुछ" का प्रयोग "कोई" के अर्थ में संज्ञा के समान होता है, तब उसकी कारक-रचना बहुवचन के अर्थ में होती है; जैसे, "उनमें से **कुछ** ने इस बात को स्वीकार करने की कृपा दिखाई।" "**कुछ** ऐसे हैं।" "**कुछ** की भाषा सहज है।"

२७७—निजवाचक "आप", "क्या" और "कुछ" को छोड़ शेष सर्वनामों के आदरार्थ बहुवचनरूपों के साथ, बहुत्व

का स्पष्ट बोध कराने के लिए "लोग" वा "लोगों" लगाते हैं; जैसे, ये लोग, उन लोगों को, किन लोगों से। "कौन" को छोड़ शेष सर्वनामों के साथ "लोग" के बदले कभी कभी "सब" आता है; जैसे, हम सब; आप सबको; इन सब में से।

२७८—विकारी सर्वनामों के मेल से बने हुए सर्वनामों के दोनों अवयव विकृत होते हैं; जैसे, जिस किसी को; जिस जिससे; किसी न किसी का नाम।

पाँचवाँ अध्याय

विशेषणों का रूपांतर

२७९—हिंदी में **आकारांत** विशेषणों को छोड़ दूसरे विशेषणों में कोई विकार नहीं होता; परंतु सब विशेषणों का प्रयोग संज्ञाओं के समान होता है; इसलिए यह कहा जा सकता है कि विशेषणों में बहुधा लिंग, वचन और कारक होते हैं।

२८०—"आप", "क्या" और "कुछ" को छोड़कर शेष मूल सार्वनामिक विशेषणों के पश्चात् विभक्त्यंत वा संबंध-सूचकांत संज्ञा आने पर उनके दोनों वचनों में विकृत रूप आता है; जैसे, "**मुझ** दीन को", "**तुझ** मूर्ख से", "**हम** ब्राह्मणों का धर्म", "**उस** गाँव तक", **किस** वृक्ष की छाल", "**उन** पेड़ों पर"।

२८१—**यौगिक** सार्वनामिक विशेषण **आकारांत** होते हैं; जैसे, ऐसा, वैसा, इतना, उतना। ये आकारांत गुणवाचक

विशेषण के समान विशेष्य के लिंग, वचन और कारक के अनुसार बदलते हैं; जैसे, ऐसे मनुष्य का, ऐसे लड़के, ऐसी लड़की, ऐसी लड़कियाँ।

२८२—**आकारांत गुणवाचक** विशेषण विशेष्य के लिंग, वचन और कारक के अनुसार बदलते हैं। इनमें जो रूपांतर होते हैं, वही संबंध-कारक की विभक्ति "**का**" में होते हैं।

आकारांत विशेषणों में विकार होने के नियम ये हैं—

(१) पुल्लिंग विशेष्य बहुवचनों में हो अथवा विभक्त्यंत वा संबंध-सूचकांत हो, विशेषण के अंत्य "आ" के स्थान में "ए" होता है; जैसे, छोटे लड़के, ऊँचे घर में, बड़े लड़के समेत।

(२) स्त्रीलिंग विशेष्य के साथ विशेषण के अंत्य "आ" के स्थान में "ई" होती है; जैसे, छोटी लड़की, छोटी लड़की ने, छोटी लड़की को।

(क) कई एक आकारांत संख्यावाचक विशेषणों में भी विकार होता है; जैसे, आधी रोटी, पहला लड़का, दूसरी पुस्तक।

२८३—आकारांत क्रिया-विशेषण और संबंध-सूचक (जो अर्थ में प्राय: विशेषण के समान हैं) आकारांत विशेषणों के समान विकृत होते हैं; जैसे, सती **ऐसी** नारी; तालाब का **जैसा** रूप; सिंह के **से** गुण; मुझे जाड़ा **सा** लगता है। जो जितने बड़े हैं, उनकी ईर्षा **उतनी** ही बड़ी है। वे उनसे **इतने** हिल गये थे।

विशेषणों की तुलना

१८४—हिंदी में विशेषणों की तुलना करने के लिए उनमें कोई विकार नहीं होता। यह अर्थ बहुधा नीचे लिखे नियमों के द्वारा सूचित किया जाता है।

(अ) दो वस्तुओं में से किसी के भी गुण का न्यूनाधिक भाव सूचित करने के लिए जिस वस्तु के साथ तुलना करते हैं, उसका नाम (उपमान) अपादान-कारक में लाया जाता है; और जिस वस्तु की तुलना करते हैं, उसका नाम (उपमेय) गुण-वाचक विशेषण के साथ आता है; जैसे, "मारनेवाले से पालनेवाला बड़ा होता है।" "कारण तें कारज कठिन होइ।"

(आ) अपादान-कारक के बदले बहुधा संज्ञा के साथ "अपेक्षा" वा "बनिस्बत" का उपयोग किया जाता है और विशेषण (अथवा संज्ञा के संबंध-कारक) के साथ अर्थ के अनुसार "अधिक" वा "कम" शब्दों का प्रयोग होता है; जैसे, वह लड़की "राज-कन्या की अपेक्षा अधिक सुंदरी, सुशीला और सच्चरित्रा है।" "मेरा जमाना बंगालियों की बनिस्बत तुम फिरंगियों के लिए ज्यादा मुसीबत का था।" "हिंदुस्तान में इस समय और देशों की अपेक्षा सच्चे सावधान बहुत कम हैं।"

(इ) सर्वोत्तमता सूचित करने के लिए विशेषण के पहले "सबसे" लगाते हैं और उपमान को अधिकरण-कारक में रखते हैं; जैसे, "सबसे बड़ी हानि।" "है विश्व में सबसे बली सर्वांतकारी काल ही।"

———

छठा अध्याय

क्रियाओं का रूपांतर

२८५—क्रिया में वाच्य, काल, अर्थ, पुरुष, लिंग और वचन के कारण विकार होता है।

(क) जिस क्रिया में ये विकार पाये जाते हैं और जिसके द्वारा विधान किया जाता है, उसे समापिका क्रिया कहते हैं; जैसे, "लड़का पढ़कर खेलता है" इस वाक्य में "खेलता है" समापिका क्रिया है; "पढ़कर" नहीं है।

(१) वाच्य

२८६—**वाच्य** क्रिया के उस रूपांतर को कहते हैं जिससे जाना जाता है कि वाक्य में कर्त्ता के विषय में विधान किया गया है वा कर्म के विषय में, अथवा केवल भाव के विषय में; जैसे, "स्त्री कपड़ा सीती है" (कर्त्ता), "कपड़ा सिया जाता है" (कर्म), "यहाँ बैठा नहीं जाता" (भाव)।

२८७—**कर्तृवाच्य** क्रिया के उस रूपांतर को कहते हैं जिससे जाना जाता है कि वाक्य का उद्देश्य क्रिया का कर्त्ता है; जैसे, "लड़का **दौड़ता है**", "लड़का पुस्तक **पढ़ता है**", "लड़के ने पुस्तक **पढ़ी**", "रानी ने सहेलियों को **बुलाया**"।

२८८—क्रिया के उस रूप को **कर्मवाच्य** कहते हैं जिससे जाना जाता है कि वाक्य का उद्देश्य क्रिया का कर्म

है; जैसे, कपड़ा सिया **जाता है**। चिट्ठी **भेजी गई**। मुझसे यह बोझ न **उठाया जायगा**।

२८९—क्रिया के जिस रूप से यह जाना जाता है कि वाक्य का उद्देश्य क्रिया का कर्त्ता या कर्म नहीं है, उस रूप को **भाववाच्य** कहते हैं; जैसे, "यहाँ कैसे **बैठा जायगा**।" "धूप में **चला नहीं जाता**।"

२९०—कर्तृवाच्य अकर्मक और सकर्मक दोनों प्रकार की क्रियाओं में होता है; कर्मवाच्य केवल सकर्मक क्रियाओं में और भाववाच्य केवल अकर्मक क्रियाओं में होता है।

(अ) यदि कर्मवाच्य और भाववाच्य क्रियाओं में कर्त्ता को लिखने की आवश्यकता हो, तो उसे करण-कारक में रखते हैं; जैसे, लड़के से रोटी नहीं खाई गई। मुझसे चला नहीं जाता। कर्मवाच्य में कर्त्ता कभी कभी "द्वारा" शब्द के साथ आता है; जैसे, "मेरे द्वारा पुस्तक पढ़ी गई।"

(आ) जनना, भूलना, खोना आदि कुछ सकर्मक क्रियाएँ बहुधा कर्मवाच्य में नहीं आतीं।

२९१—जब क्रिया का कर्त्ता अज्ञात हो अथवा उसके प्रकट करने की आवश्यकता न हो तब कर्मवाच्य क्रिया आती है; जैसे, "चोर पकड़ा गया है", "आज हुक्म सुनाया जायगा"। भाववाच्य क्रिया बहुधा अशक्यता के अर्थ में आती है; जैसे, "यहाँ कैसे बैठा जायगा।" "लड़के से चला नहीं जाता।"

२९२—द्विकर्मक क्रियाओं के कर्मवाच्य में मुख्य कर्म उद्देश्य होता है और गौण कर्म ज्यों का त्यों रहता है; जैसे, राजा को **भेंट** दी गई। विद्यार्थी को **गणित** सिखाया जायगा।

(२) काल

२९३—क्रिया के उस रूपांतर को **काल** कहते हैं जिससे क्रिया के व्यापार का **समय** तथा उसकी पूर्ण वा अपूर्ण अवस्था का बोध होता है; जैसे, मैं जाता हूँ (वर्तमानकाल)। मैं जाता था (अपूर्ण भूतकाल)। मैं जाऊँगा (भविष्यत्काल।)

२९४—हिंदी में क्रिया के कालों के मुख्य तीन भेद होते हैं—(१) वर्तमानकाल (२) भूतकाल (३) भविष्यत्काल।

२९५—क्रिया के जिस रूप से केवल काल का बोध होता है और व्यापार की **पूर्ण** वा **अपूर्ण** अवस्था का बोध नहीं होता, उसे काल की **सामान्य** अवस्था कहते हैं। व्यापार की सामान्य, अपूर्ण और पूर्ण अवस्था के विचार से हिंदी में मुख्य कालों के जो छः भेद होते हैं, उनके नाम और उदाहरण ये हैं—

काल	सामान्य	अपूर्ण	पूर्ण
वर्तमान	चलता	०	चला है
भूत	चला	चलता था	चला था
भविष्यत्	चलेगा	०	०

(१) सामान्य वर्तमानकाल से जाना जाता है कि व्यापार का आरंभ बोलने के समय हुआ है; जैसे, हवा चलती है। लड़का पुस्तक पढ़ता है। चिट्ठी भेजी जाती है।

(२) पूर्ण वर्तमानकाल की क्रिया से सूचित होता है कि व्यापार वर्तमानकाल में पूर्ण हुआ है; जैसे, नौकर आया है। चिट्ठी भेजी गई है। इसे आसन्नभूत भी कहते हैं।

(३) सामान्य भूतकाल की क्रिया से जाना जाता है कि व्यापार बोलने वा लिखने के पहले हुआ है; जैसे, पानी गिरा। गाड़ी आई। चिट्ठी भेजी गई।

(४) अपूर्ण भूतकाल से बोध होता है कि व्यापार गत काल में पूरा नहीं हुआ, किंतु जारी रहा; जैसे, गाड़ी आती थी। चिट्ठी लिखी जाती थी। नौकर घूमता था।

(५) पूर्ण भूतकाल से ज्ञात होता है कि व्यापार को पूर्ण हुए बहुत समय बीत चुका; जैसे, नौकर चिट्ठी लाया था। सेना लड़ाई पर भेजी गई थी।

(६) सामान्य भविष्यत्-काल की क्रिया से ज्ञात होता है कि व्यापार का आरंभ होनेवाला है; जैसे, नौकर जायगा, हम कपड़े पहिनेंगे, चिट्ठी भेजी जायगी।

(३) अर्थ

२९६—क्रिया के जिस रूप से विधान करने की रीति का बोध होता है, उसे "अर्थ" कहते हैं; जैसे, लड़का **जाता है**

(निश्चय)। लड़का **जाय** (संभावना)। तुम **जाओ** (आज्ञा)। यदि लड़का **जाता** तो अच्छा होता (संकेत)।

२६७—हिंदी में क्रियाओं के मुख्य पाँच अर्थ होते हैं— (१) निश्चयार्थ, (२) संभावनार्थ, (३) संदेहार्थ, (४) आज्ञार्थ और (५) संकेतार्थ।

(१) क्रिया के जिस रूप से किसी विधान का निश्चय सूचित होता है, उसे **निश्चयार्थ** कहते हैं; जैसे, "लड़का **आता है**।" "नौकर चिट्ठी नहीं **लाया**।" "हम किताब **पढ़ते रहेंगे**।" "क्या आदमी न **जायगा** ?"

(२) संभावनार्थ क्रिया से अनुमान, इच्छा, कर्तव्य आदि का बोध होता है; जैसे, कदाचित् पानी **बरसे** (अनुमान)। तुम्हारी जय **हो** (इच्छा)। राजा को उचित है कि प्रजा का पालन **करे** (कर्त्तव्य)।

(३) संदेहार्थ क्रिया से किसी बात का संदेह जाना जाता है; जैसे, "लड़का आता **होगा**", "नौकर गया **होगा**"।

(४) आज्ञार्थ क्रिया से आज्ञा, उपदेश, निषेध आदि का बोध होता है; जैसे, तुम **जाओ**, लड़का **जाय**, वहाँ मत **जाना**, क्या मैं **जाऊँ** (प्रार्थना)।

(५) संकेतार्थ क्रिया से ऐसी दो घटनाओं की असिद्धि सूचित होती है जिनमें कार्य-कारण का **संबंध होता है**; जैसे, "यदि मेरे पास बहुत सा धन **होता तो मैं चार** काम **करता**।"

२६८—सब अर्थों के अनुसार पूर्वोक्त कालों के जो सोलह भेद होते हैं, उनके नाम और उदाहरण नीचे दिये जाते हैं—

निश्चयार्थ	संभावनार्थ	संदेहार्थ	आज्ञार्थ	संकेतार्थ
(१) सामान्य वर्तमान वह चलता है	(७) संभाव्य वर्त्तमान वह चलता हो	(१०) संदिग्ध वर्तमान वह चलता होगा	(१२) प्रत्यक्ष विधि तू चल	(१४) सामान्य संकेतार्थ वह चलता
(२) पूर्ण वर्तमान वह चला है	(८) संभाव्य भूत वह चला हो	(११) संदिग्ध भूत वह चला होगा	(१३) परोक्ष विधि तू चलना	(१५) अपूर्ण संकेतार्थ वह चलता होता
(३) सामान्यभूत वह चला	(९) संभाव्य भविष्यत् वह चले			(१६) पूर्ण संकेतार्थ वह चला होता
(४) अपूर्ण भूत वह चलता था				
(५) पूर्ण भूत वह चला था				
(६) सामान्य भविष्यत् वह चलेगा				

(४) पुरुष, लिंग और वचन

प्रयोग

२९९—हिंदी क्रियाओं में तीन पुरुष (उत्तम, मध्यम और अन्य), दो लिंग (पुल्लिंग और स्त्रीलिंग) और दो वचन (एकवचन और बहुवचन) होते हैं। उदा०—

पुल्लिंग

पुरुष	एकवचन	बहुवचन
उत्तम पुरुष	मैं चलता हूँ	हम चलते हैं
मध्यम ”	तू चलता है	तुम चलते हो
अन्य ”	वह चलता है	वे चलते हैं

स्त्रीलिंग

उत्तम पुरुष	मैं चलती हूँ	हम चलती हैं
मध्यम ”	तू चलती है	तुम चलती हो
अन्य ”	वह चलती है	वे चलती हैं

३००—आकारांत कालों में पुल्लिंग एकवचन का प्रत्यय आ, पुल्लिंग बहुवचन का प्रत्यय ए, स्त्रीलिंग एकवचन का प्रत्यय ई और स्त्रीलिंग बहुवचन का प्रत्यय ईं है। इनमें पुरुष के कारण विकार नहीं होता।

३०१—संभाव्य-भविष्यत् और विधिकालों में लिंग के कारण कोई रूपांतर नहीं होता। स्थितिदर्शक “होना” क्रिया के सामान्य वर्तमान के रूपों में भी लिंग का कोई विकार नहीं होता।

३०२—वाक्य में कर्त्ता वा कर्म के पुरुष, लिंग और वचन के अनुसार क्रिया का जो अन्वय वा अनन्वय होता है, इसे प्रयोग कहते हैं। हिन्दी में तीन प्रयोग होते हैं—(१) कर्त्तरिप्रयोग, (२) कर्मणिप्रयोग (३) भावेप्रयोग।

(१) कर्त्ता के लिंग, वचन और पुरुष के अनुसार जिस क्रिया का रूपांतर होता है, उस क्रिया को **कर्त्तरिप्रयोग** कहते हैं; जैसे, मैं चलता हूँ, वह जाती है, लड़की कपड़ा सीती है।

(२) जिस क्रिया के पुरुष, लिंग और वचन कर्म के पुरुष, लिंग और वचन के अनुसार होते हैं, उसे **कर्मणिप्रयोग** कहते हैं; जैसे, मैंने पुस्तक पढ़ी, पुस्तक पढ़ी गई, रानी ने पत्र लिखा।

(३) जिस क्रिया के पुरुष, लिंग और वचन कर्त्ता वा कर्म के अनुसार नहीं होते, अर्थात् जो सदा अन्य पुरुष, पुल्लिंग, एकवचन में रहती है, उसे **भावेप्रयोग** कहते हैं; जैसे, रानी ने सहेलियों को बुलाया। मुझसे चला नहीं जाता। लड़के ने छींका।

३०३—सकर्मक क्रियाओं के भूतकालिक कृदंत से बने हुए कालों को छोड़कर कर्तृवाच्य के शेष कालों में और अकर्मक क्रियाओं के सब कालों में कर्त्तरिप्रयोग होता है; जैसे, हम जाते हैं, वह आवे, लड़कियाँ पुस्तक पढ़ेंगी। कर्त्तरिप्रयोग में कर्त्ता-कारक अप्रत्यय रहता है।

अप०—(१) भूतकालिक कृदंत से बने हुए कालों में बोलना, भूलना, बकना, लाना, समझना और जनना सकर्मक क्रियाएँ कर्त्तरिप्रयोग में आती हैं; जैसे, लड़की कुछ न बोली, हम बहुत बके, गाय बछड़ा जनी।

(२) नहाना, छींकना आदि अकर्मक क्रियाएँ भूतकालिक कृदंत से बने हुए कालों में भावेप्रयोग में आती हैं; जैसे, हमने नहाया है, लड़की ने छींका।

३०४—कर्मणिप्रयोग दो प्रकार का होता है—(१) कर्तृवाच्य कर्मणिप्रयोग और (२) कर्मवाच्य कर्मणिप्रयोग।

(१) "बोलना"-वर्ग की सकर्मक क्रियाओं को छोड़ शेष कर्तृवाच्य सकर्मक क्रियाएँ भूतकालिक कृदंत से बने कालों में (अप्रत्यय कर्मकारक के साथ) कर्मणिप्रयोग में आती हैं; जैसे, मैंने पुस्तक पढ़ी, मंत्री ने पत्र लिखे।

कर्तृवाच्य कर्मणिप्रयोग में कर्त्ता-कारक का "ने" प्रत्यय आता है।

(२) कर्मवाच्य की क्रियाएँ कर्मणिप्रयोग में आती हैं; जैसे, चिट्ठी भेजी गई, लड़का बुलाया जायगा।

३०५—भावेप्रयोग दो प्रकार का होता है—(१) कर्तृवाच्य भावेप्रयोग (२) भाववाच्य भावेप्रयोग।

(१) कर्तृवाच्य भावेप्रयोग में सकर्मक क्रिया के कर्त्ता और कर्म दोनों सप्रत्यय रहते हैं; और यदि क्रिया अकर्मक हो तो केवल कर्त्ता सप्रत्यय रहता है; जैसे, रानी ने सहेलियों को बुलाया, हमने नहाया है।

(२) भाववाच्य भावेप्रयोग में सदा अकर्मक क्रिया आती है। यदि उसके कर्त्ता की आवश्यकता हो तो उसे करण-कारक में रखते हैं; जैसे, यहाँ बैठा नहीं जाता; मुझसे चला नहीं जाता।

(५) कृदंत

३०६—क्रिया के जिन रूपों का उपयोग दूसरे शब्द-भेदों के समान होता है, उन्हें कृदंत कहते हैं; जैसे, चलना (संज्ञा),

चलता (विशेषण), चलकर (क्रिया-विशेषण), मारे, लिए (संबंधसूचक)।

३०७—हिंदी में रूप के अनुसार कृदंत दो प्रकार के होते हैं (१) विकारी और (२) अविकारी वा अव्यय। विकारी कृदंतों का प्रयोग बहुधा संज्ञा वा विशेषण के समान होता है और कृदंत अव्यय बहुधा क्रिया-विशेषण वा संबंधसूचक के समान आते हैं। यहाँ उन कृदंतों का विचार किया जाता है जो काल-रचना तथा संयुक्त क्रियाओं में प्रयुक्त होते हैं।

१—विकारी कृदन्त

३०८—विकारी कृदंत चार प्रकार के हैं—(१) क्रियार्थक संज्ञा, (२) कर्तृवाचक संज्ञा, (३) वर्तमानकालिक कृदंत और (४) भूतकालिक कृदंत।

३०९—धातु के अंत में "ना" जोड़ने से **क्रियार्थक संज्ञा** बनती है। इसका प्रयोग बहुधा संज्ञा के समान होता है। यह संज्ञा केवल पुल्लिंग और एकवचन में आती है और इसकी कारक-रचना संबोधन कारक को छोड़ शेष कारकों में आकारांत पुल्लिंग (तद्भव) संज्ञा के समान होती है; जैसे, जाने को, जाने में।

३१०—क्रियार्थक संज्ञा के विकृत रूप के अंत में "वाला" लगाने से **कर्तृवाचक संज्ञा** बनती है; जैसे, चलनेवाला, जानेवाला। इसका प्रयोग कभी कभी भविष्यत्कालिक कृदंत विशेषण के समान होता है; जैसे, आज मेरा भाई **आनेवाला**

है। कर्तृवाचक संज्ञा का रूपांतर आकारांत संज्ञा वा विशेषण के समान होता है।

३११—**वर्तमानकालिक कृदंत** धातु के अंत में "ता" लगाने से बनता है; जैसे, चलता, बोलता। इसका प्रयोग बहुधा विशेषण के समान होता है और इसका रूप आकारांत विशेषण के समान बदलता है; जैसे, **बहता** पानी, **चलती** चक्की, **जीते** कीड़े।

३१२—**भूतकालिक कृदंत** धातु के अंत में आ जोड़ने से बनता है। इसकी रचना नीचे लिखे नियमों के अनुसार होती है—

(१) अकारांत धातु के अंत्य अ के स्थान में 'आ' कर देते हैं; जैसे,

बोलना—बोला पहचानना—पहचाना
डरना—डरा मारना—मारा

(२) धातु के अंत में आ, ए वा ओ हो तो धातु के अंत में "या" कर देते हैं; जैसे,

लाना—लाया सेना—सेया बोना—बोया
कहलाना—कहलाया खोना—खोया डुबोना—डुबोया

(अ) यदि धातु के अंत में ई हो तो उसे ह्रस्व कर देते हैं; जैसे,

पीना—पिया जीना—जिया सीना—सिया

(३) ऊकारांत धातु के "ऊ" को ह्रस्व करके उसके आगे "आ" लगाते हैं; जैसे,

चूना—चुवा छूना—छुआ

३१३—नीचे लिखे भूतकालिक कृदंत नियम-विरुद्ध बनते हैं।

होना—हुआ	जाना—गया
करना—किया	लेना—लिया

देना—दिया

३१४—भूतकालिक कृदंत का प्रयोग बहुधा आकारांत विशेषण के समान होता है; जैसे, मरा घोड़ा, गिरा घर, उठे हाथ, सुनी बात, लिखी चिट्ठियाँ।

(अ) वर्तमानकालिक और भूतकालिक कृदंतों के साथ बहुधा "हुआ" लगाते हैं और इसमें भी मूल कृदंतों के समान रूपांतर होता है; जैसे, दौड़ता हुआ घोड़ा, चलती हुई गाड़ी, देखी हुई वस्तु, मरे हुए लोग।

(आ) वर्तमानकालिक और भूतकालिक कृदंत कभी कभी संज्ञा के समान आते हैं; जैसे, मरता क्या न करता, डूबते को तिनके का सहारा, हाथ का दिया, पिसे को पीसना।

२—कृदंत अव्यय

३१५—कृदंत अव्यय चार प्रकार के हैं—

(१) पूर्वकालिक, (२) तात्कालिक, (३) अपूर्ण क्रियाद्योतक और (४) पूर्ण क्रियाद्योतक।

३१६—पूर्वकालिक कृदंत अव्यय धातु के रूप में रहता है अथवा धातु के अंत में "के", "कर" या "करके" जोड़ने से बनता है; जैसे—

क्रिया	धातु	पूर्वकालिक कृदंत
जाना	जा	जाके, जाकर, जा करके

क्रिया	धातु	पूर्वकालिक कृदंत
खाना	खा	खाके, खाकर, खा करके
दौड़ना	दौड़	दौड़के, दौड़कर, दौड़ करके

(क) पूर्वकालिक कृदंत अव्यय से बहुधा मुख्य क्रिया के पहले होनेवाले व्यापार की समाप्ति का बोध होता है; जैसे, "हम नगर **देखकर** लौटे।"

३१७—वर्तमान कालिक कृदंत के "ता" को "ते" आदेश करके उसके आगे "ही" जोड़ने से तात्कालिक कृदंत अव्यय बनता है; जैसे, बोलते ही, आते ही। इससे मुख्य क्रिया के साथ होनेवाले व्यापार की समाप्ति का बोध होता है; जैसे, "उसने **आते ही** उपद्रव मचाया।"

३१८—अपूर्ण क्रियाद्योतक कृदंत अव्यय का रूप तात्कालिक कृदंत अव्यय के समान "ता" को "ते" आदेश करने से बनता है; परंतु उसके साथ "ही" नहीं जोड़ी जाती; जैसे, सोते, रहते, देखते। इससे मुख्य क्रिया के साथ होनेवाले व्यापार की अपूर्णता सूचित होती है; जैसे, "मुझे घर **लौटते** रात हो जायगी।" "उसने जहाजों को एक पाँति में **जाते** देखा।"

३१९—पूर्ण क्रियाद्योतक कृदंत अव्यय भूतकालिक कृदंत विशेषण के अंत्य "आ" को "ए" आदेश करने से बनता है; जैसे, किये, गये, बीते, लिये, मारे। इस कृदंत से बहुधा मुख्य क्रिया के साथ होनेवाले व्यापार की पूर्णता का बोध होता है;

जैसे, इतनी रात **गये** तुम क्यों आये ? इस बात को **हुए** कई वर्ष बीत गये। महाराज कमर **कसे** बैठे हैं।

(क) अपूर्ण क्रियाद्योतक और पूर्ण क्रियाद्योतक कृदंतों के साथ बहुधा "होना" क्रिया का पूर्ण क्रियाद्योतक कृदंत अव्यय "हुए" लगाया जाता है; जैसे, "दो एक दिन आते हुए दासी ने उसको देखा था।" "धर्म एक बैताल के सिर पिटारा रखवाये हुए आता है।"

(६) काल-रचना

३२०—क्रिया के वाच्य, अर्थ, काल, पुरुष, लिंग और वचन के कारण होनेवाले सब रूपों का संग्रह करना **काल-रचना** कहलाता है।

(क) हिंदी के सोलह कालरचना के विचार से तीन वर्गों में बाँटे जाते हैं। पहले वर्ग में वे काल आते हैं जो **धातु** में प्रत्ययों के लगाने से बनते हैं; दूसरे वर्ग में वे काल आते हैं; जो **वर्तमान-कालिक कृदंत** में सहकारी क्रिया "होना" के रूप लगाने से बनते हैं; और तीसरे वर्ग में वे काल आते हैं जो **भूतकालिक कृदंत** में सहकारी क्रिया के रूप जोड़कर बनाये जाते हैं। इन वर्गों के अनुसार कालों का वर्गीकरण नीचे दिया जाता है—

पहला वर्ग

धातु से बने हुए काल

(१) संभाव्य-भविष्यत् (३) प्रत्यक्षविधि

(२) सामान्य-भविष्यत् (४) परोक्षविधि

दूसरा वर्ग

वर्तमानकालिक कृदंत से बने हुए काल

(१) सामान्य संकेतार्थ हेतुहेतुमद्भूत
(२) सामान्य-वर्तमान
(३) अपूर्ण भूत
(४) संभाव्य-वर्तमान
(५) संदिग्ध-वर्तमान
(६) अपूर्ण संकेतार्थ

तीसरा वर्ग

भूतकालिक कृदंत से बने हुए काल

(१) सामान्यभूत
(२) पूर्णवर्तमान (आसन्नभूत)
(३) पूर्णभूत
(४) संभाव्य-भूत
(५) संदिग्ध-भूत
(६) पूर्ण संकेतार्थ

[सूचना—इन तीनों वर्गों में से पहले वर्ग के चारों काल तथा सामान्य संकेतार्थ और सामान्य-भूतकाल केवल प्रत्ययों के योग से बनते हैं; इसलिए ये छः काल साधारण काल कहलाते हैं और शेष दस काल सहकारी क्रिया के योग से बनने के कारण संयुक्त-काल कहे जाते हैं।]

१—कर्तृवाच्य

३२१—पहले वर्ग के चारों कालों के कर्तृवाच्य के रूप नीचे लिखे अनुसार बनते हैं—

(१) संभाव्य भविष्यत्काल बनाने के लिए धातु में ये प्रत्यय जोड़े जाते हैं—

पुरुष	एकवचन	बहुवचन
उ० पु०	ऊँ	एँ
म० पु०	ए	ओ
अ० पु०	ए	एँ

(अ) यदि धातु अकारांत हो तो ये प्रत्यय "अ" के स्थान में लगाये जाते हैं; जैसे, "लिख" से "लिखूँ", "कह" से "कहे", "बोल" से "बोलें"।

(आ) यदि धातु के अंत में आकार वा ओकार हो तो "ऊँ" और "ओ" को छोड़ शेष प्रत्ययों के पहले विकल्प से "व" का आगम* होता है; जैसे, "जा" से जाये वा जावे, "गा" से गाये वा गावे, "खो" से खोये वा खोवे। ईकारांत और ऊकारांत धातुओं का (जब उनमें "व" का आगम नहीं होता) अंत्य स्वर ह्रस्व हो जाता है; जैसे, जिऊँ, जिओ, पिये वा पीवे, सीएँ वा सीवें, छुए वा छूवे।

(इ) एकारांत धातुओं में ऊँ और ओ को छोड़ शेष प्रत्ययों के पहले "व" का आगम होता है; जैसे, सेवे, खेवें, देवें।

(ई) देना और लेना क्रियाओं के धातुओं में विकल्प से सब प्रत्ययों का आदेश होता है; जैसे, दूँ (देऊँ), दे (देवे), दो (देओ), लूँ (लेऊँ), ले (लेवे), लो (लेओ)।

(उ) आकारांत धातुओं के परे ए और एँ के स्थान में विकल्प से क्रमशः य और यँ आते हैं; जैसे, जाय, जायँ, खाय, खायँ।

---

* बाहरी अक्षर का उपयोग।

(२) सामान्य भविष्यत्-काल की रचना के लिए संभाव्य-भविष्यत् के प्रत्येक पुरुष में पुल्लिंग एकवचन के लिए गा, पुल्लिंग बहुवचन के लिए गे, और स्त्रीलिंग एकवचन तथा बहुवचन के लिए गी लगाते हैं; जैसे, जाऊँगा, जायँगे, जायगी, जाओगी।

(३) प्रत्यक्ष विधि का रूप संभाव्य-भविष्यत् के रूप के समान होता है; दोनों में केवल मध्यम पुरुष के एकवचन का अंतर होता है। विधि का मध्यम पुरुष एकवचन धातु ही के समान होता है; जैसे, "कहना" से "कह", "जाना" से "जा"।

(अ) आदर-सूचक "आप" के साथ मध्यम पुरुष में धातु के आगे "इये" जोड़ देते हैं; जैसे, आइये, बैठिये।

(आ) लेना, देना, पीना, करना और होना के आदर-सूचक विधि-काल में, "इये" के पहले ज का आगम होता है और उनके आद्य स्वरों में प्रायः वही रूपांतर होता है जो इन क्रियाओं के भूतकालिक कृदंत बनाने में किया जाता है; जैसे—

लेना—लीजिये देना—दीजिये
होना—हूजिये करना—कीजिये पीना—पीजिये

(इ) "चाहिए" यथार्थ में चाहना की आदर-सूचक विधि का रूप है। पर इससे वर्तमानकाल की आवश्यकता का बोध होता है; जैसे, मुझे पुस्तक चाहिए।

(ई) विशेष आदर के लिए "आप" के साथ धातु में "इयेगा" प्रत्यय जोड़ते हैं; जैसे, आइयेगा, बैठियेगा।

(४) परोक्ष विधि के दो रूप होते हैं—(क) क्रियार्थक संज्ञा तद्वत् परोक्ष विधि होती है; (ख) आदर-सूचक विधि के अंत में ओ आदेश होता है; जैसे, "तू **रहना** सुख से पति-संग ।" "पिता, इस लता को मेरे ही समान **गिनियो** ।" परोक्ष विधि केवल मध्यमपुरुष में आती है, और दोनों वचनों में एक ही रूप का प्रयोग होता है । पिछला रूप बहुधा कविता में आता है ।

३२२—संयुक्त कालों की रचना में "होना" सहकारी क्रिया के रूपों का योग होता है, इसलिए ये रूप आगे लिखे जाते हैं । हिंदी में "होना" क्रिया के दो अर्थ हैं—(१) स्थिति (२) विकार । पहले अर्थ में इस क्रिया के केवल दो काल होते हैं । दूसरे अर्थ में इसकी काल-रचना और क्रियाओं के समान होती है ।

होना (स्थितिदर्शक)

(१) सामान्य वर्तमानकाल

कर्त्ता—पुल्लिंग वा स्त्रीलिंग

पुरुष	एकवचन	बहुवचन
उ० पु०	मैं हूँ	हम हैं
म० पु०	तू है	तुम हो
अ० पु०	वह है	वे हैं

(२) सामान्य भूतकाल

कर्त्ता—पुल्लिंग

उ० पु०	मैं था	हम थे
म० पु०	तू था	तुम थे
अ० पु०	वह था	वे थे

कर्त्ता—स्त्रीलिंग

१—३—	थी	थीं

होना (विकारदर्शक)

(१) संभाव्य भविष्यत्-काल

कर्त्ता—पुल्लिंग वा स्त्रीलिंग

१—मैं होऊँ	हम हों, होवें
२—तू हो, होवे	तुम होओ, हो
३—वह हो, होवे	वे हों, होवें

(२) सामान्य भविष्यत्-काल

कर्त्ता—पुल्लिंग (स्त्री०)

१—मैं होऊँगा (होऊँगी)	हम होंगे, होवेंगे (होंगी, होवेंगी)
२—तू होवेगा, (होगी, होवेगी)	तुम होओगे, होगे, (होगी)
३—वह होगा, होवेगा, (होगी, होवेगी)	वे होंगे, होवेंगे, (होंगी, होवेंगी)

३ सामान्य संकेतार्थ

कर्त्ता—पुल्लिंग (स्त्री०)

१—३—मैं होता (होती)   हम होते (होतीं)

३२३—दूसरे वर्ग के छओं कर्तृवाच्य काल वर्तमानकालिक कृदंत के साथ "होना" सहकारी क्रिया के ऊपर लिखे पाँचों कालों के रूप जोड़ने से बनते हैं।

(१) सामान्य संकेतार्थ काल वर्तमानकालिक कृदंत को कर्त्ता के पुरुष-लिंग-वचनानुसार बदलने से बनता है। इसके साथ सहकारी क्रिया नहीं आती; जैसे, मैं आता, हम आते, वे आतीं।

(२) सामान्य वर्तमानकाल वर्तमानकालिक कृदंत के साथ स्थितिदर्शक सहकारी क्रिया के सामान्य वर्तमानकाल के रूप जोड़ने से बनता है; जैसे, मैं आता हूँ, वह आती है, तुम आती हो।

(३) अपूर्ण भूतकाल बनाने के लिए वर्तमानकालिक कृदंत के साथ स्थितिदर्शक सहकारी क्रिया के सामान्य भूतकाल के रूप (था) जोड़ते हैं; जैसे, मैं आता था, तू आती थी, वह आती थी, वे आती थीं।

(४) वर्तमानकालिक कृदंत के साथ विकारदर्शक सहकारी क्रिया के संभाव्य भविष्यत्-काल के रूप लगाने से संभाव्य वर्तमानकाल बनता है; जैसे, मैं आता होऊँ, वह आता हो, वे आती हों।

(५) वर्तमानकालिक कृदंत के साथ सहकारी क्रिया के सामान्य-भविष्यत् के रूप लगाने से संदिग्ध वर्तमानकाल बनता है; जैसे, मैं आता होऊँगा, वह आता होगा, वे आती होंगी।

(६) अपूर्ण संकेतार्थ काल बनाने के लिए वर्तमान-कालिक कृदंत के साथ सहकारी क्रिया के सामान्य संकेतार्थ काल के रूप लगाये जाते हैं; जैसे, आज दिन यदि बढ़ई हल न तैयार करते होते तो हमारी क्या दशा होती!

३२४—तीसरे वर्ग के छत्रों कर्तृवाच्य काल भूतकालिक कृदंत के साथ "होना" सहकारी क्रिया के पूर्वोक्त पाँचों कालों के रूप जोड़ने से बनते हैं। इन कालों में "बोलना" वर्ग की क्रियाओं को छोड़कर शेष सकर्मक क्रियाएँ कर्मणिप्रयोग वा भावेप्रयोग में आती हैं। यहाँ केवल कर्त्तरिप्रयोग के उदाहरण दिये जाते हैं—

(१) सामान्य भूतकाल भूतकालिक कृदंत में कर्त्ता के पुरुष-लिंग-वचनानुसार रूपांतर करने से बनता है। इसके साथ सहकारी क्रिया नहीं आतीं; जैसे, मैं आया, हम आये, वह बोला, वे बोलीं।

(२) आसन्न-भूत बनाने के लिए भूतकालिक कृदंत के साथ स्थितिदर्शक सहकारी क्रिया के सामान्य-वर्तमान के रूप जोड़ते हैं; जैसे, मैं बोला हूँ, वह बोला है, तू आया है, वे आई हैं।

(३) पूर्ण भूतकाल भूतकालिक कृदंत के साथ स्थिति-दर्शक सहकारी क्रिया के सामान्य भूतकाल के रूप जोड़कर

बनाया जाता है; जैसे, मैं आया था, वह आई थी, तुम बोली थीं, हम बोली थीं।

(४) भूतकालिक कृदंत के साथ सहकारी क्रिया के संभाव्य भविष्यत्-काल के रूप जोड़ने से संभाव्य भूतकाल बनता है; जैसे, मैं बोला होऊँ, तू बोला हो, वह आई हो, हम आई हों।

(५) भूतकालिक कृदंत के साथ सहकारी क्रिया के सामान्य भविष्यत्-काल के रूप जोड़ने से संदिग्ध भूतकाल बनता है; जैसे, मैं आया होऊँगा, वह आया होगा, वे आई होंगी।

(६) पूर्ण संकेतार्थ काल बनाने के लिए भूतकालिक कृदंत के साथ सहकारी क्रिया के सामान्य संकेतार्थ काल के रूप लगाये जाते हैं; जैसे, "जो तू एक बार भी जी से पुकारा होता, तो तेरी पुकार तीर की तरह तारों के पार पहुँची होती।"

(क) जब आकारांत कृदंतों के साथ सहकारी क्रिया आती है, तब स्त्रीलिंग के बहुवचन का रूपांतर केवल सहकारी क्रिया में होता है; जैसे, मैं जाती हूँ, हम जाती हैं, वे जाती थीं।

३२५—आगे कर्तृवाच्य के सब कालों में तीन क्रियाओं के रूप लिखे जाते हैं। इन क्रियाओं में एक अकर्मक, एक सहकारी और एक सकर्मक है। अकर्मक क्रिया हलंत धातु की और सकर्मक क्रिया स्वरांत धातु की है। सहकारी "होना" क्रिया के कुछ रूप अनियमित होते हैं।

(अकर्मक) "चलना" क्रिया (कर्तृवाच्य)

धातु...	... चल (हलंत)।
कर्तृवाचक संज्ञा	... चलनेवाला।
वर्तमानकालिक कृदंत ...	... चलता हुआ।
भूतकालिक कृदंत... ...	... चला हुआ।
पूर्वकालिक कृदंत... ...	... चल, चलकर।
तात्कालिक कृदंत... ...	... चलते ही।
अपूर्ण क्रियाद्योतक कृदंत ...	... चलते हुए।
पूर्ण क्रियाद्योतक कृदंत ...	... चले हुए।

(क) धातु से बने हुए काल

कर्त्तरिप्रयोग

(१) संभाव्य भविष्यत्-काल

कर्त्ता—पुल्लिंग वा स्त्रीलिंग

एकवचन	बहुवचन
१—मैं चलूँ	हम चलें
२—तू चले	तुम चलो
३—वह चले	वे चलें

(२) सामान्य भविष्यत्-काल

कर्त्ता—पुल्लिंग (स्त्री०)

एकवचन	बहुवचन
१—मैं चलूँगा (चलूँगी)	हम चलेंगे (चलेंगी)
२—तू चलेगा (चलेगी)	तुम चलोगे (चलोगी)
३—वह चलेगा (चलेगी)	वे चलेंगे (चलेंगी)

(३) प्रत्यक्ष विधिकाल (साधारण)

कर्त्ता—पुल्लिंग वा स्त्रीलिंग

१—मैं चलूँ	हम चलें
२—तू चल	तुम चलो
३—वह चले	वे चलें

(आदर-सूचक)

२	×	आप चलिये या चलियेगा

(४) परोक्ष विधिकाल

२—तू चलना वा चलियो	तुम चलना वा चलियो

(ख) वर्तमानकालिक कृदंत से बने हुए काल

कर्त्तरिप्रयोग

(१) सामान्य संकेतार्थ काल

कर्त्ता—पुल्लिंग (स्त्री०)

१—३ चलता (चलती)	चलते (चलतीं)

(२) सामान्य वर्तमानकाल

कर्त्ता—पुल्लिंग (स्त्री०)

१—मैं चलता हूँ (चलती हूँ)	हम चलते हैं (चलती हैं)
२—तू चलता है (चलती है)	तुम चलते हो (चलती हो)
३—वह चलता है (चलती है)	वे चलते हैं (चलती हैं)

(३) अपूर्ण भूतकाल

कर्त्ता—पुल्लिंग (स्त्री०)

१—३-चलता था (चलती थी)	चलते थे (चलती थीं)

(४) संभाव्य वर्तमानकाल

कर्त्ता—पुल्लिंग (स्त्री०)

१—मैं चलता होऊँ (चलती होऊँ) हम चलते हों (चलती हों)
२—तू चलता हो (चलती हो) तुम चलते होओ (चलती होओ)
३—वह चलता हो (चलती हो) वे चलते हों (चलती हों)

(५) संदिग्ध वर्तमानकाल

कर्त्ता—पुल्लिंग (स्त्री०)

१–मैं चलता होऊँगा (चलती होऊँगी) हम चलते होंगे (चलती होंगी)
२–तू चलता होगा (चलती होगी) तुम चलते होगे (चलती होगी)
३–वह चलता होगा (चलती होगी) वे चलते होंगे (चलती होंगी)

(६) अपूर्ण संकेतार्थकाल

कर्त्ता—पुल्लिंग (स्त्री०)

१--३--चलता होता (चलती होती) चलते होते (चलती होतीं)

(ग) भूतकालिक कृदंत से बने हुए काल

कर्त्तरिप्रयोग

(१) सामान्य भूतकाल

कर्त्ता—पुल्लिंग (स्त्री०)

१--३--चला (चली) चले (चलीं)

(२) आसन्न भूतकाल

कर्त्ता—पुल्लिंग (स्त्री०)

१--मैं चला हूँ (चली हूँ) हम चले हैं (चली हैं)

२—तू चला है (चली है) तुम चले हो (चली हो)
३—वह चला है (चली है) वे चले हैं (चली हैं)

(३) पूर्ण भूतकाल

कर्त्ता—पुल्लिंग (स्त्री०)

१--३--चला था (चली थी) चले थे (चली थीं)

(४) संभाव्य भूतकाल

कर्त्ता—पुल्लिंग (स्त्री०)

१--मैं चला होऊँ (चली होऊँ) हम चले हों (चली हों)
२ -तू चला हो (चली हो) तुम चले होओ (चली होओ)
३--वह चला हो (चली हो) वे चले हों (चली हों)

(५) संदिग्ध भूतकाल

कर्त्ता—पुल्लिंग (स्त्री०)

१--मैं चला होऊँगा (चली होऊँगी) हम चले होंगे (चली होंगी)
२—तू चला होगा (चली होगी) तुम चले होगे (चली होगी)
३--वह चला होगा (चली होगी) वे चले होंगे (चली होंगी)

(६) पूर्ण संकेतार्थ

कर्त्ता—पुल्लिंग (स्त्री०)

१--३--चला होता (चली होती) चले होते (चली होतीं)

(सहकारी) "होना" (विकारदर्शक) क्रिया (कर्तृवाच्य)

धातु ... ... हो (स्वरांत)।
कर्तृवाचक संज्ञा ... ... होनेवाला।
वर्तमानकालिक कृदंत ... ... होता हुआ।

भूतकालिक कृदंत	...	...	हुआ।
पूर्वकालिक कृदंत	...	...	हो, होकर।
तात्कालिक कृदंत	...	...	होते ही।
अपूर्ण क्रियाद्योतक कृदंत	...	...	होते हुए।
पूर्ण क्रियाद्योतक कृदंत	...	...	हुए।

(क) धातु से बने हुए काल

(१) संभाव्य भविष्यत्-काल

(२) सामान्य भविष्यत्-काल

[इन कालों के रूप पहले (अंक ३२२) में दिये गये हैं।]

(३) प्रत्यक्ष विधिकाल (साधारण)

कर्त्ता--पुल्लिंग वा स्त्रीलिंग

१—मैं होऊँ	हम हों, होवें
२—तू हो	तुम होओ, हो
३—वह हो, होवे	वे हों, होवें

(आदर-सूचक)

२ ×	आप हूजिए वा हूजिएगा

(४) परोक्ष विधिकाल

२—तू होना वा हूजियो	तुम होना वा हूजियो

(ख) वर्तमानकालिक कृदंत से बने हुए काल

कर्त्तरिप्रयोग

(१) सामान्य संकेतार्थ काल

[इस काल के रूपों के लिए अं० ३२२ देखो।]

(२) सामान्य वर्तमानकाल

कर्त्ता—पुल्लिंग (स्त्री०)

१—मैं होता हूँ (होती हूँ)	हम होते हैं (होती हैं)
२—तू होता है (होती है)	तुम होते हो (होती हो)
३—वह होता है (होती है)	वे होते हैं (होती हैं)

(३) अपूर्ण भूतकाल

कर्त्ता—पुल्लिंग (स्त्री०)

१-३-होता था (होती थी)	होते थे (होती थीं)

(४) संभाव्य वर्तमानकाल

कर्त्ता—पुल्लिंग (स्त्री०)

१-मैं होता होऊँ (होती होऊँ)	हम होते हों (होती हों)
२-होता हो (होती हो)	तुम होते होओ (होती होओ)
३-वह होता हो (होती हो)	वे होते हों (होती हों)

(५) संदिग्ध वर्तमानकाल

कर्त्ता—पुल्लिंग (स्त्री०)

१-मैं होता होऊँगा (होती होऊँगी)	हम होते होंगे (होती होंगी)
२-तू होता होगा (होती होगी)	तुम होते होगे (होती होगी)
३-वह होता होगा (होती होगी)	वे होते होंगे (होती होंगी)

(६) अपूर्ण संकेतार्थकाल

[इस काल में "होना" क्रिया के रूप नहीं होते।]

(ग) भूतकालिक कृदंत से बने हुए काल

कर्त्तरिप्रयोग

(१) सामान्य भूतकाल

कर्त्ता—पुल्लिंग (स्त्री०)

१—३—हुआ (हुई) हुए (हुईं)

(२) आसन्न भूतकाल

कर्त्ता—पुल्लिंग (स्त्री०)

१–मैं हुआ हूँ (हुई हूँ) हम हुए हैं (हुई हैं)
२–तू हुआ है (हुई है) तुम हुए हो (हुई हो)
३–वह हुआ है (हुई है) वे हुए हैं (हुई हैं)

(३) पूर्ण भूतकाल

कर्त्ता—पुल्लिंग (स्त्री०)

१—३—हुआ था (हुई थी) हुए थे (हुई थीं)

(४) संभाव्य भूतकाल

कर्त्ता—पुल्लिंग (स्त्री०)

१–मैं हुआ होऊँ (हुई होऊँ) हम हुए हों (हुई हों)
२–तू हुआ हो (हुई हो) तुम हुए होओ (हुई होओ)
३–वह हुआ हो (हुई हो) वे हुए हों (हुई हों)

(५) संदिग्ध भूतकाल

कर्त्ता—पुल्लिंग (स्त्री०)

१–मैं हुआ होऊँगा (हुई होऊँगी) हम हुए होंगे (हुई होंगी)

२–तू हुआ होगा (हुई होगी) तुम हुए होगे (हुई होगी)
३–वह हुआ होगा (हुई होगी) वे हुए होंगे (हुई होंगी)

(६) पूर्ण संकेतार्थकाल

कर्त्ता—पुल्लिंग (स्त्री०)

१—३—हुआ होता (हुई होती) हुए होते (हुई होतीं)

(सकर्मक) "पाना" क्रिया (कर्तृवाच्य)

धातु	... ...	पा (स्वरांत)।
कर्तृवाचक संज्ञा	... ...	पानेवाला।
वर्तमानकालिक कृदंत	... ...	पाता हुआ।
भूतकालिक कृदंत	... ...	पाया हुआ।
पूर्वकालिक कृदंत	... ...	पा, पाकर।
तात्कालिक कृदंत	... ...	पाते ही।
अपूर्ण क्रियाद्योतक कृदंत	... ...	पाते हुए।
पूर्ण क्रियाद्योतक कृदंत	... ...	पाये हुए।

(क) धातु से बने हुए काल

कर्त्तरिप्रयोग

(१) संभाव्य भविष्यत्-काल

कर्त्ता—पुल्लिंग वा स्त्रीलिंग

एकवचन	बहुवचन
१–मैं पाऊँ	हम पाएँ, पावें, पायँ
२–तू पाए, पावे, पाय	तुम पाओ
३–वह पाए, पावे, पाय	वे पाएँ, पावें, पायँ

(२) सामान्य भविष्यत्-काल

कर्त्ता—पुल्लिंग (स्त्री०)

१—मैं पाऊँगा (पाऊँगी)	हम पाएँगे, पावेंगे, पायँगे (पाएँगी, पावेंगी, पायँगी)
२—तू पाएगा, पावेगा, पायगा (पाएगी, पावेगी, पायगी)	तुम पाओगे (पाओगी)
३—वह पाएगा, पावेगा, पायगा (पाएगी, पावेगी, पायगी)	वे पाएँगे, पावेंगे, पायँगे (पाएँगी, पावेंगी, पायँगी)

(३) प्रत्यक्ष विधि-काल (साधारण)

कर्त्ता—पुल्लिंग वा स्त्रीलिंग

१—मैं पाऊँ	हम पाएँ, पावें, पायँ
२—तू पा	तुम पाओ
३—वह पाए, पावे, पाय	वे पाएँ, पावें, पायँ

(आदर-सूचक)

२ ×	आप पाइये वा पाइयेगा

(४) परोक्ष विधि-काल

२—तू पाना वा पाइयो	तुम पाना वा पाइयो

(ख) वर्तमानकालिक कृदंत से बने हुए काल

कर्त्तरिप्रयोग

(१) सामान्य संकेतार्थ काल

कर्त्ता—पुल्लिंग (स्त्री०)

१—३—पाता (पाती)	पाते (पातीं)

(२) सामान्य वर्तमानकाल

कर्त्ता—पुल्लिंग (स्त्री०)

१—मैं पाता हूँ (पाती हूँ) हम पाते हैं (पाती हैं)
२—तू पाता है (पाती है) तुम पाते हो (पाती हो)
३—वह पाता है (पाती है) वे पाते हैं (पाती हैं)

(३) अपूर्ण भूतकाल

कर्त्ता—पुल्लिंग (स्त्री०)

१—३—पाता था (पाती थी) पाते थे (पाती थीं)

(४) संभाव्य वर्तमानकाल

कर्त्ता—पुल्लिंग (स्त्री०)

१—मैं पाता होऊँ (पाती होऊँ) हम पाते हों (पाती हों)
२—त पाता हो (पाती हो) तुम पाते होओ (पाती होओ)
३—वह पाता हो (पाती हो) वे पाते हों (पाती हों)

(५) संदिग्ध वर्तमानकाल

कर्त्ता—पुल्लिंग (स्त्री०)

१—मैं पाता होऊँगा (पाती होऊँगी) हम पाते होंगे (पाती होंगी)
२—तृ पाता होगा (पाती होगी) तुम पाते होगे (पाती होगी)
३—वह पाता होगा (पाती होगी) वे पाते होंगे (पाती होंगी)

(ग) भूतकालिक कृदंत से बने हुए काल

कर्मणिप्रयोग

(१) सामान्य भूतकाल

कर्म—पुल्लिंग, एकवचन		कर्म—स्त्रीलिंग, एकवचन	
मैंने वा हमने तूने वा तुमने उसने वा उन्होंने	पाया	मैंने वा हमने तूने वा तुमने उसने वा उन्होंने	पाई

कर्म—पुल्लिंग, बहुवचन		कर्म—स्त्रीलिंग, बहुवचन	
मैंने वा हमने तूने वा तुमने उसने वा उन्होंने	पाए	मैंने वा हमने तूने वा तुमने उसने वा उन्होंने	पाईं

(२) आसन्न भूतकाल

कर्म—पुल्लिंग, एकवचन		कर्म—स्त्रीलिंग, एकवचन	
मैंने वा हमने तूने वा तुमने उसने वा उन्होंने	पाया है	मैंने वा हमने तूने वा तुमने उसने वा उन्होंने	पाई है

कर्म—पुल्लिंग, बहुवचन		कर्म—स्त्रीलिंग, बहुवचन	
मैंने वा हमने तूने वा तुमने उसने वा उन्होंने	पाये हैं	मैंने वा हमने तूने वा तुमने उसने वा उन्होंने	पाई हैं

(३) पूर्ण भूतकाल

कर्म—पुल्लिंग, एकवचन		कर्म—स्त्रीलिंग, एकवचन	
मैंने वा हमने तूने वा तुमने उसने वा उन्होंने	पाया था	मैंने वा हमने तूने वा तुमने उसने वा उन्होंने	पाई थी

कर्म—पुल्लिंग, बहुवचन		कर्म—स्त्रीलिंग, बहुवचन	
मैंने वा हमने तूने वा तुमने उसने वा उन्होंने	पाये थे	मैंने वा हमने तूने वा तुमने उसने वा उन्होंने	पाई थीं

(४) संभाव्य-भूतकाल

कर्म—पुल्लिंग	एकवचन	बहुवचन
मैंने वा हमने तूने वा तुमने उसने वा उन्होंने	पाया हो	पाये हों

कर्म—स्त्रीलिंग	एकवचन	बहुवचन
मैंने वा हमने तूने वा तुमने उसने वा उन्होंने	पाई हो	पाई हों

(५) संदिग्ध भूतकाल

कर्म—पुल्लिंग	एकवचन	बहुवचन
मैंने वा हमने तूने वा तुमने उसने वा उन्होंने	पाया होगा	पाये होंगे

कर्म—स्त्रीलिंग	एकवचन	बहुवचन
मैंने वा हमने तूने वा तुमने उसने वा उन्होंने	पाई होगी	पाई होंगी

(६) पूर्ण संकेतार्थ काल

कर्म—पुल्लिंग	एकवचन	बहुवचन
मैंने वा हमने तूने वा तुमने उसने वा उन्होंने	पाया होता	पाए होते

कर्म—स्त्रीलिंग	एकवचन	बहुवचन
मैंने वा हमने तूने वा तुमने उसने वा उन्होंने	पाई होती	पाई होतीं

२—कर्मवाच्य

३२६—कर्मवाच्य क्रिया बनाने के लिए सकर्मक धातु के भूतकालिक कृदंत के आगे "जाना" सहायक क्रिया के सब कालों और अर्थों के रूप जोड़ते हैं। कर्मवाच्य के कर्मणि-प्रयोग में (अं०—३०४) कर्म उद्देश्य होकर अप्रत्यय कर्त्ता-कारक के रूप में आता है, और क्रिया के पुरुष, लिंग, वचन उस कर्म के अनुसार होते हैं; जैसे, लड़का बुलाया गया है, लड़की बुलाई गई है।

३२७—आगे "देखना" सकर्मक क्रिया के कर्मवाच्य (कर्मणिप्रयोग) के केवल पुल्लिंग रूप दिये जाते हैं। स्त्रीलिंग रूप कर्तृवाच्य काल-रचना के अनुकरण पर सहज ही बना लिये जा सकते हैं।

(सकर्मक) "देखना" क्रिया (कर्मवाच्य)

धातु	देखा जा।
वर्तमानकालिक कृदंत	देखा जाता हुआ।
भूतकालिक कृदंत	देखा गया (देखा हुआ)।
पूर्वकालिक कृदंत	देखा जाकर।
तात्कालिक कृदंत	देखे जाते ही।
अपूर्ण क्रियाद्योतक कृदंत	देखे जाते हुए। } क्वचित्
पूर्ण क्रियाद्योतक कृदंत	देखे गये हुए। } क्वचित्

(क) धातु से बने हुए काल

कर्मणिप्रयोग (कर्म—पुल्लिंग)

(१) संभाव्य भविष्यत्-काल

एकवचन	बहुवचन
१—मैं देखा जाऊँ	हम देखे जाएँ, जावें, जायँ
२—तू देखा जाए, जावे, जाय	तुम देखे जाओ
३—वह " " " "	वे देखे जाएँ, जावें, जायँ

(२) सामान्य भविष्यत्-काल

१—मैं देखा जाऊँगा	हम देखे जाएँगे, जावेंगे, जायँगे

२—तू देखा जाएगा, जावेगा, जायगा　　तुम देखे जाओगे
३—वह"　　"　　"　　वे देखे जाएँगे, जावेंगे, जायँगे

(३) प्रत्यक्ष विधिकाल

१—मैं देखा जाऊँ　　हम देखे जाएँ, जावें, जायँ
२—तू देखा जा　　तुम देखे जाओ
३—वह देखा जाए, जावे, जाय वे देखे जाएँ, जावें, जायँ

(४) परोक्ष विधिकाल

१—तू देखा जाना वा जाइयो तुम देखे जाना वा जाइयो

(ख) वर्तमानकालिक कृदंत से बने हुए काल

कर्मणिप्रयोग (कर्म—पुल्लिंग)

(१) सामान्य संकेतार्थकाल

१—३—देखा जाता　　देखे जाते

(२) सामान्य वर्तमानकाल

१—मैं देखा जाता हूँ　　हम देखे जाते हैं
२—तू देखा जाता है　　तुम देखे जाते हो
३—वह"　"　"　　वे देखे जाते हैं

(३) अपूर्ण भूतकाल

१—३—देखा जाता था　　देखे जाते थे

(४) संभाव्य वर्तमानकाल

१—मैं देखा जाता होऊँ　　हम देखे जाते हों
२—तू देखा जाता हो　　तुम देखे जाते होओ
३—वह"　"　"　　वे देखे जाते हों

(५) संदिग्ध वर्तमानकाल

१—मैं देखा जाता होऊँगा	हम देखे जाते होंगे
२—तू देखा जाता होगा	तुम देखे जाते होगे
३—वह" " "	वे देखे जाते होंगे

(६) अपूर्ण संकेतार्थकाल

१-३—देखा जाता होता	देखे जाते होते

(ग) भूतकालिक कृदंत से बने हुए काल

कर्मणिप्रयोग (कर्म—पुल्लिंग)

(१) सामान्य भूतकाल

१-३—देखा गया	देखे गये

(२) आसन्न भूतकाल

१—मैं देखा गया हूँ	हम देखे गये हैं
२—तू देखा गया है	तुम देखे गये हो
३—वह" " "	वे देखे गये हैं

(३) पूर्णभूत काल

१-३—देखा गया था	देखे गये थे

(४) संभाव्य भूतकाल

१—मैं देखा गया होऊँ	हम देखे गये हों
२—तू देखा गया हो	तुम देखे गये हो
३—वह" " "	वे देखे गये हों

(५) संदिग्ध भूतकाल

१—मैं देखा गया होऊँगा	हम देखे गये होंगे
२—तू देखा गया होगा	तुम देखे गये होगे
३—वह ,, ,, ,,	वे देखे गये होंगे

(६) पूर्ण संकेतार्थकाल

१—३—देखा गया होता	देखे गये होते

१—भाववाच्य

३२८—भाववाच्य (अं० २९०) अकर्मक क्रिया का वह रूप है जो कर्मवाच्य के समान होता है। आवश्यक होने पर उसका कर्त्ता करण-कारक में आता है। भाववाच्य क्रिया सदैव अन्यपुरुष, पुल्लिंग, एकवचन में रहती है; जैसे, हमसे चला न गया, रात भर किसी से जागा नहीं जाता।

३२९—भाववाच्य क्रिया सदा भावेप्रयोग में आती है (अं०—३०५) और उसका प्रयोग अशक्यता के अर्थ में "न" वा "नहीं" के साथ होता है। भाववाच्य क्रिया सब कालों और कृदंतों में नहीं आती।

३३०—यहाँ भाववाच्य के केवल उन्हीं कालों के रूप लिखे जाते हैं जिनमें उसका प्रयोग होता है—

(अकर्मक) "चला जाना" क्रिया (भाववाच्य)

धातु.......................................चला जा।

[सूचना—इस क्रिया से और कृदंत नहीं बनते।]

(क) धातु से बने हुए काल

भावेप्रयोग

(१) संभाव्य भविष्यत्-काल

१--मुझसे वा हमसे २--तुझसे वा तुमसे ३--उससे वा उनसे	चला जाए, जावे, जाय

(२) सामान्य भविष्यत्-काल

१--मुझसे वा हमसे २--तुझसे वा तुमसे ३--उससे वा उनसे	चला जाएगा, जावेगा, जायगा

(ख) वर्तमानकालिक कृदंत से बने हुए काल

भावेप्रयोग

(१) सामान्य संकेतार्थ

१--मुझसे वा हमसे २--तुझसे वा तुमसे ३--उससे वा उनसे	चला जाता

(२) सामान्य वर्तमानकाल

१--मुझसे वा हमसे २--तुझसे वा तुमसे ३--उससे वा उनसे	चला जाता है

(३) अपूर्ण भूतकाल

१--मुझसे वा हमसे २--तुझसे वा तुमसे ३--उससे वा उनसे	चला जाता था

(४) संभाव्य वर्तमानकाल

१--मुझसे वा हमसे २--तुझसे वा तुमसे ३--उससे वा उनसे	चला जाता हो

(५) संदिग्ध वर्तमानकाल

१--मुझसे वा हमसे २--तुझसे वा तुमसे ३--उससे वा उनसे	चला जाता होगा

(ग) भूतकालिक कृदंत से बने हुए काल

भावेप्रयोग

(१) सामान्य भूतकाल

१--मुझसे वा हमसे २--तुझसे वा तुमसे ३--उससे वा उनसे	चला गया

(२) आसन्न भूतकाल

१--मुझसे वा हमसे २--तुझसे वा तुमसे ३--उससे वा उनसे	चला गया है

(३) पूर्ण भूतकाल

१—मुझसे वा हमसे २—तुझसे वा तुमसे ३—उससे वा उनसे	} चला गया था

(४) संभाव्य भूतकाल

१—मुझसे वा हमसे २—तुझसे वा तुमसे ३—उससे वा उनसे	} चला गया हो

(५) संदिग्ध भूतकाल

१—मुझसे वा हमसे २—तुझसे वा तुमसे ३—उससे वा उनसे	} चला गया होगा

सातवाँ अध्याय

संयुक्त क्रियाएँ

३३१—धातुओं के कुछ विशेष कृदंतों के आगे (विशेष अर्थ में) कोई कोई क्रियाएँ जोड़ने से जो क्रियाएँ बनती हैं, उन्हें **संयुक्त क्रियाएँ** कहते हैं; जैसे, करने लगना, जा सकना, मार देना। इन उदाहरणों में करने, जा और मार कृदंत हैं और इनके आगे लगना, सकना, देना क्रियाएँ जोड़ी गई हैं। संयुक्त क्रियाओं में मुख्य क्रिया का कृदंत रहता है और सहायक क्रिया के काल के रूप रहते हैं।

३३२—रूप के अनुसार संयुक्त क्रियाएँ छः प्रकार की होती हैं—

(१) क्रियार्थक संज्ञा के मेल से बनी हुई।
(२) वर्तमानकालिक कृदंत के मेल से बनी हुई।
(३) भूतकालिक कृदंत के मेल से बनी हुई।
(४) पूर्वकालिक कृदंत के मेल से बनी हुई।
(५) संज्ञा या विशेषण के मेल से बनी हुई।
(६) पुनरुक्त संयुक्त क्रियाएँ।

३३३—संयुक्त क्रियाओं में नीचे लिखी सहायक क्रियाएँ आती हैं—आना, उठना, करना, चाहना, चुकना, जाना, देना, डालना, पढ़ना, पाना, बैठना, रहना, लगना, लेना, सकना, होना।

(क) इनमें से बहुधा सकना और चुकना को छोड़ शेष क्रियाएँ स्वतंत्र भी हैं और अर्थ के अनुसार दूसरी सहायक क्रियाओं से मिलकर स्वयं संयुक्त क्रियाएँ हो सकती हैं।

(१) क्रियार्थक संज्ञा के मेल से बनी हुई संयुक्त क्रियाएँ

३३४—क्रियार्थक संज्ञा के मेल से बनी हुई संयुक्त क्रिया में क्रियार्थक संज्ञा दो रूपों में आती है—(१) साधारण रूप में और (२) विकृत रूप में।

३३५—**साधारण** रूप के साथ "पड़ना", "होना", "चाहिए" क्रियाओं को जोड़ने से **आवश्यकताबोधक संयुक्त क्रिया** बनती है; जैसे, करना पड़ता है, करना चाहिए।

(क) जब इन संयुक्त क्रियाओं में क्रियार्थक संज्ञा का प्रयोग विशेषण के समान होता है, तब ये बहुधा विशेष्य के लिंग-वचन के अनुसार बदलती हैं; जैसे, कुलियों की मदद करनी चाहिए। मुझे दवा पीनी पड़ेगी। जो होनी है सो होगी।

३३६—क्रियार्थक संज्ञा के **विकृत** रूप से तीन प्रकार की संयुक्त क्रियाएँ बनती हैं—(१) आरंभबोधक, (२) अनुमतिबोधक, (३) अवकाशबोधक।

(१) **आरंभबोधक क्रिया** "लगना" क्रिया के योग से बनती है; जैसे, वह कहने लगा।

(२) "देना" जोड़ने से **अनुमतिबोधक क्रिया** बनती है; जैसे, मुझे जाने दीजिए, उसने मुझे बोलने न दिया।

(३) **अवकाशबोधक क्रिया** अर्थ में अनुमतिबोधक क्रिया की प्राय: विरोधिनी है, इसमें "देना" के बदले "पाना" जोड़ा जाता है; जैसे, "तू यहाँ से जाने न पावेगा।" "बात न होने पाई।"

(अ) पाना क्रिया कभी कभी पूर्वकालिक कृदंत के धातुवत् रूप के साथ भी आती है; जैसे, "कुछ लोगों ने श्रीमान् को बड़ी कठिनाई से एक दृष्टि देख पाया।"

(२)-वर्तमानकालिक कृदंत के मेल से बनी हुई

३३७—वर्तमानकालिक कृदंत के आगे आना, जाना वा रहना क्रिया जोड़ने से **नित्यताबोधक** क्रिया बनती है।

इस क्रिया में कृदंत के लिंग-वचन विशेष्य के अनुसार बदलते हैं; जैसे, यह बात सनातन से होती आती है। पानी बरसता रहेगा। लड़का चिट्ठी लिखता जाता था।

(३) भूतकालिक कृदंत के मेल से बनी हुई

३३८—अकर्मक क्रियाओं के भूतकालिक कृदंत के आगे "जाना" क्रिया जोड़ने से **तत्परताबोधक** संयुक्त क्रिया बनती है। यह क्रिया केवल वर्तमानकालिक कृदंत से बने हुए कालों में आती है; जैसे, लड़का आया जाता है। मारे लू के सिर फटा जाता था। वह मारे चिंता के मरी जाती थी।

३३९—भूतकालिक कृदंत के आगे "करना" क्रिया जोड़ने से **अभ्यासबोधक** क्रिया बनती है; जैसे, "तुम हमें देखो न देखो, हम तुम्हें **देखा करें**", "बारह बरस दिल्ली रहे पर भाड़ ही **झोंका किये**"।

३४०—भूतकालिक कृदंत के आगे "चाहना" क्रिया जोड़ने से **इच्छाबोधक** संयुक्त क्रिया बनती है; जैसे, "तुम **किया चाहोगे** तो सफाई होनी कौन कठिन है।" "**देखा चहौं** जानकी माता।"

(अ) अभ्यासबोधक और इच्छाबोधक क्रियाओं में "जाना" का भूतकालिक कृदंत "जाया" होता है; जैसे, वह जाया करता है। मैं जाया चाहता हूँ।

(४) पूर्वकालिक कृदंत के मेल से बनी हुई

३४१—पूर्वकालिक कृदंत के योग से तीन प्रकार की संयुक्त क्रियाएँ बनती हैं—(१) अवधारणबोधक, (२) शक्तिबोधक और (३) पूर्णताबोधक।

३४२—**अवधारणबोधक** क्रिया से मुख्य क्रिया के अर्थ में अधिक निश्चय पाया जाता है। नीचे लिखी सहायक क्रियाएँ इस अर्थ में आती हैं—

(१) उठना, (२) बैठना, (३) डालना—ये क्रियाएँ बहुधा 'अचानकपन' के अर्थ में आती हैं; जैसे, बोल उठना, जाग उठना, मार बैठना, उठ बैठना, तोड़ डालना, काट डालना।

(४) आना, (५) लेना—इनसे बहुधा वक्ता की ओर क्रिया का व्यापार सूचित होता है; जैसे, ले आना, बढ़ आना, कर लेना, समझ लेना।

(६) पड़ना, (७) जाना—ये क्रियाएँ बहुधा शीघ्रता सूचित करती हैं; जैसे, कूद पड़ना, चौंक पड़ना, खा जाना, पहुँच जाना।

(८) देना—इस क्रिया से बहुधा दूसरे की ओर व्यापार का होना पाया जाता है; जैसे, छोड़ देना, कह देना, मार देना।

(९) रहना—यह क्रिया बहुधा भूतकालिक कृदंतों से बने हुए कालों में आती है। इसके आसन्नभूत और पूर्णभूत कालों से क्रमशः अपूर्ण वर्तमान और अपूर्ण भूत का बोध होता है; जैसे, लड़के खेल रहे हैं। लड़की खेल रही थी।

३४३—**शक्तिबोधक** क्रिया "सकना" के योग से वनती है; जैसे, खा सकना, मार सकना, दौड़ सकना, हो सकना।

३४४—**पूर्णताबोधक** क्रिया "चुकना" क्रिया के योग से वनती है; जैसे, खा चुकना, पढ़ चुकना, दौड़ चुकना।

(५) संज्ञा या विशेषण के मेल से वनी हुई

३४५—संज्ञा (वा विशेषण) के साथ क्रिया जोड़ने से जो संयुक्त क्रिया वनती है, उसे **नामबोधक** क्रिया कहते हैं; जैसे, भस्म होना, भस्म करना, स्वीकार होना, स्वीकार करना।

३४६—नामबोधक संयुक्त क्रियाओं में "करना", "होना" और "देना" क्रियाएँ आती हैं। "करना" और "होना" के साथ वहुधा संस्कृत की क्रियार्थक संज्ञाएँ और "देना" के साथ हिंदी की भाववाचक संज्ञाएँ आती हैं; जैसे,

होना—स्वीकार होना, नाश होना, स्मरण होना, कंठ होना।

करना—स्वीकार करना, अंगीकार करना, नाश करना, आरंभ करना।

देना—दिखाई देना, सुनाई देना, पकड़ाई देना, छुलाई देना।

(६) पुनरुक्त संयुक्त क्रियाएँ

३४७—जब दो समान अर्थवाली वा समान ध्वनिवाली क्रियाओं का संयोग होता है, तब उन्हें **पुनरुक्त संयुक्त क्रियाएँ** कहते हैं; जैसे, पढ़ना-लिखना, करना-धरना, समझना-बूझना।

(अ) जो क्रिया केवल यमक (ध्वनि) मिलाने के लिए आती है, वह निरर्थक रहती है; जैसे, पूछना-ताछना, होना-हवाना।

(आ) पुनरुक्त क्रियाओं में दोनों क्रियाओं का रूपांतर होता है, परंतु सहायक क्रिया केवल पिछली क्रिया के साथ आती है; जैसे, अपना काम देखो-भालो, यह वहाँ जाया-आया करता है।

३४८—सकर्मक संयुक्त क्रियाओं का कर्मवाच्य बनाने के लिए मुख्य क्रिया के भूतकालिक कृदंत के साथ 'जाना' क्रिया के कृदंत में सहायक क्रिया के काल जोड़ते हैं; जैसे, चिट्ठी लिखी जाने लगी। काम किया जा सकता है। पानी लाया जा चुकेगा।

(क) कर्मवाच्य में बहुधा अवकाशबोधक, अभ्यास-बोधक, इच्छा-बोधक और अकर्मक सहायक क्रियाओं के योग से बनी हुई अवधारण-बोधक, सकर्मक संयुक्त क्रियाएँ नहीं आतीं।

३४९—अकर्मक सहायक क्रियाओं के योग से बनी हुई सकर्मक संयुक्त क्रियाएँ (कर्तृवाच्य में) भूतकालिक कृदंत से बने कालों में सदैव कर्त्तरिप्रयोग में आती हैं; जैसे, लड़का पढ़ने लगा। हम बात करते रहे। लड़की काम न कर सकी। वह उसे मार बैठा।

(अ) अभ्यास-बोधक और "देना" के योग से बनी हुई नाम-बोधक संयुक्त क्रियाएँ भी कर्त्तरिप्रयोग में आती हैं; जैसे, बारह बरस दिल्ली रहे, पर भाड़ ही झोंका किये। चोर थोड़ी दूर पर दिखाई दिया।

दूसरा भाग
शब्द-साधन
तीसरा परिच्छेद
व्युत्पत्ति
पहला अध्याय
विषयारंभ

३५०—शब्द-साधन के तीन भाग हैं—वर्गीकरण, रूपांतर और व्युत्पत्ति। इनमें से पहले दो विषयों का विवेचन पहले हो चुका है। अब व्युत्पत्ति अर्थात् शब्द-रचना पर विचार किया जायगा।

३५१—एक ही भाषा के किसी शब्द से जो दूसरे शब्द बनते हैं, वे बहुधा तीन प्रकार से बनाये जाते हैं। किसी किसी शब्द के पूर्व उपसर्ग लगाने से नये शब्द बनते हैं। किसी किसी शब्द के पश्चात् प्रत्यय लगाकर नये शब्द बनाये जाते हैं; और किसी किसी शब्द के साथ दूसरा शब्द मिलाने से नये सामासिक शब्द तैयार होते हैं।

३५२—प्रत्ययों से बने हुए शब्दों के दो मुख्य भेद हैं--**कृदंत** और **तद्धित**। धातुओं से परे जो प्रत्यय लगाये जाते हैं, उन्हें

कृत् कहते हैं; और कृत् प्रत्ययों के योग से जो शब्द बनते हैं, वे **कृदंत** कहलाते हैं। धातुओं को छोड़ शेष शब्दों के आगे प्रत्यय लगाने से जो शब्द तैयार होते हैं, उन्हें **तद्धित** कहते हैं।

दूसरा अध्याय

उपसर्ग

३५३—हिंदी में उपसर्ग-युक्त संस्कृत तत्सम और उर्दू शब्द आते हैं; इसलिए यहाँ तीनों भाषाओं के संस्कृत उपसर्गों का भी विवेचन किया जाता है।

(१) संस्कृत-उपसर्ग

अति—अधिक, उस पार, ऊपर; जैसे, अतिकाल, अतिशय।

अधि—ऊपर, स्थान में श्रेष्ठ; जैसे, अधिकार, अधिकरण।

अनु—पीछे, समान; जैसे, अनुकरण, अनुक्रम, अनुचर, अनुज।

अप—बुरा, हीन, विरुद्ध, अभाव; जैसे, अपकीर्त्ति, अपमान।

अभि—ओर, पास, सामने; जैसे, अभिप्राय, अभिमुख।

अव—नीचे, हीन, अभाव; जैसे, अवगत, अवगुण, अवतार।

आ—तक, समेत, उलटा; जैसे, आकर्षण, आजीवन, आक्रमण।

उत्—द्—ऊपर, ऊँचा, श्रेष्ठ; जैसे, उत्कर्ष, उत्कंठा, उत्तम।

उप—निकट, सदृश, गौण; जैसे, उपकार, उपदेश, उपनाम।

दुर्, दुस्—बुरा, कठिन, दुष्ट; जैसे, दुराचार, दुर्गुण, दुष्कर्मा।

निर्, निस्—बाहर, निषेध; जैसे, निर्णय, निरपराध।

परा—पीछे, उलटा; जैसे, पराक्रम, पराजय, पराभव।

परि—आसपास, चारों ओर, पूर्ण; जैसे, परिक्रमा, परिजन।

प्र—अधिक, आगे, ऊपर; जैसे, प्रख्यात, प्रचार, प्रबल।

प्रति—विरुद्ध, सामने, एक एक; जैसे, प्रतिकूल, प्रत्यक्ष, प्रतिक्षण।

वि—भिन्न, विशेष, अभाव; जैसे, विदेश, विवाद, विज्ञान।

सम्—अच्छा, साथ, पूर्ण; जैसे, संतोष, संगम, संग्रह।

सु—अच्छा, सहज, अधिक; जैसे, सुकर्म, सुगम, सुशिक्षित।

३५४—संस्कृत शब्दों में कोई कोई विशेषण और अव्यय भी उपसर्गों के समान व्यवहृत होते हैं।

अ—अभाव, निषेध; जैसे, अधर्म, अज्ञान, अगम, अनीति।

स्वरादि शब्दों के पहले "अ" के स्थान में "अन्" हो जाता है और "अन्" के "न्" में आगे का स्वर मिल जाता है। उदा०—अनेक, अनंतर।

(हिंदी) अजान, अछूता, अटल, अथाह, अलग।

अंतर्—भीतर; उदा०—अंतःपुर, अंतःकरण, अंतर्गत।

कु—(का, कद)—बुरा; उदा०—कुकर्म, कापुरुष, कदाचार।

(हिंदी) कुचाल, कुठौर, कुडौल, कुढंगा, कुपूत।

पुनर्—फिर; जैसे, पुनर्जन्म, पुनर्विवाह, पुनरुक्त।

स, सह—सहित, साथ; जैसे, सजीव, सहज, सहोदर।

(हिंदी) सवेरा, सजग, सचेत, सहेली, साढ़े।

सत्—अच्छा; जैसे, सज्जन, सत्कर्म, सद्गुरु, सत्पात्र।

स्व—अपना, निजी; उदा०—स्वदेश, स्वतंत्र, स्वभाव।

(२) हिंदी उपसर्ग

ये उपसर्ग बहुधा संस्कृत उपसर्गों के अपभ्रंश हैं और विशेष कर तद्भव शब्दों के पूर्व आते हैं।

अ—अभाव, निषेध; उदा०—अजान, अचेत, अलग, अबेर।

अप०—संस्कृत में स्वरादि शब्दों के पहले अ के स्थान में अन् हो जाता है; परंतु हिंदी में अन व्यंजनादि शब्दों के पूर्व आता है; जैसे, अनमोल, अनबन, अनभल, अनगिनत।

औ (सं०—अव)—हीन, निषेध; उदा०—औगुन, औघट।

नि (सं०—निर्)—रहित; उदा०—निकम्मा, निडर।

सु (सं०—सु)—अच्छा; उदा०—सुडौल, सुजान, सपूत।

(३) उर्दू उपसर्ग

ना—अभाव (सं०—न); उदा०—नाराज़, नापसंद, नालायक।

ब—ओर, में, अनुसार; उदा०—बनाम, ब-इजलास, बदस्तूर।

बा—साथ; उदा०—बाज़ाब्ता, बाक़ायदा, बातमीज़।

बे—बिना; उदा०—बेचारा—(हिं०—बिचारा), बेईमान, बेतरह। (यह उपसर्ग बहुधा हिंदी शब्दों में भी लगाया जाता है; जैसे, बेचैन, बेजोड़, बेसुर।

तीसरा अध्याय

प्रत्यय

३५५—यहाँ हिंदी प्रत्ययों से बने हुए कृदंत और तद्धितों का विचार किया जायगा।

(१) हिंदी कृदंत

अ—यह प्रत्यय अकारांत धातुओं में जोड़ा जाता है और इसके योग से भाववाचक संज्ञाएँ बनती हैं। उदा०—

लूटना—लूट　　मारना—मार　　जांचना—जाँच

चमकना—चमक　　पहुँचना—पहुँच　　समझना—समझ

आ—इस प्रत्यय के योग से बहुधा भाववाचक संज्ञाएँ बनती हैं; जैसे, घेरना--घेरा, फेरना--फेरा, जोड़ना--जोड़ा।

(अ) कोई कोई करणवाचक संज्ञाएं; जैसे, झूलना—झूला, ठेलना—ठेला, घेरना—घेरा।

आई—इस प्रत्यय से भाववाचक संज्ञाएँ बनती हैं जिनसे (१) क्रिया के व्यापार और (२) क्रिया के दामों का बोध होता है।

(१) लड़ना—लड़ाई, समाना—समाई, चढ़ना—चढ़ाई।

(२) लिखना—लिखाई, पीसना—पिसाई।

आऊ—यह प्रत्यय किसी किसी धातु में योग्यता के अर्थ में लगता है; जैसे, टिकना—टिकाऊ, बिकना—बिकाऊ।

आव—(भाववाचक)—जैसे, चढ़ना—चढ़ाव, बचना—बचाव, छिड़कना--छिड़काव, बहना--बहाव, लगना--लगाव।

आवट—(भाववाचक)--जैसे, लिखना--लिखावट, थकना--थकावट, रुकना--रुकावट, बनना--बनावट, सजना—सजावट।

आवा—(भाववाचक)—जैसे, भुलाना—भुलावा, छलना—छलावा, बुलाना—बुलावा, चलाना—चलावा।

आहट—(भाववाचक)—जैसे, चिल्लाना—चिल्लाहट, घबराना—घबराहट, गड़गड़ाना--गड़गड़ाहट, गुर्राना--गुर्राहट। यह प्रत्यय बहुधा अनुकरणवाचक शब्दों के साथ आता है।

ई—(भाववाचक)—जैसे, हँसना--हँसी, बोलना--बोली, मरना—मरी, धमकाना—धमकी, घुड़कनी—घुड़का।

(करणवाचक)—जैसे, रेतना—रेती, फाँसना—फाँसी।

इया—(कर्त्तृवाचक)—जैसे, जड़ना—जड़िया, लखना--लखिया, धुनना—धुनिया, नियारना—नियारिया।

ऊ—(कर्त्तृवाचक)—जैसे, खाना—खाऊ, रटना—रट्टू, उड़ाना—उड़ाऊ, बिगाड़ना—बिगाड़ू, काटना—काटू।

ऐया—(कर्त्तृवाचक)—जैसे, काटना--कटैया, बचाना--बचैया, परोसना—परोसैया, मारना—मरैया।

क—(कर्त्तृवाचक)--जैसे, मारना--मारक, घालना--घालक।

त—(भाववाचक)—जैसे, बचना—बचत, खपना—खपत, पड़ना—पड़त, रँगना—रंगत।

न—(भाववाचक)—जैसे, चलना--चलन, कहना—कहन।

(करणवाचक)—जैसे, झाड़ना—झाड़न, बेलना—बेलन।

ना—इस प्रत्यय से क्रियार्थक और करणवाचक संज्ञाएँ बनती हैं। हिंदी में इस कृदंत से धातु का भी निर्देश करते हैं; जैसे, बोलना, लिखना, देना, खाना।

(करणवाचक) जैसे, बेलना—बेलन, ओढ़ना—ओढ़न।

नी—इस प्रत्यय के योग से स्त्रीलिंग कृदंत संज्ञाएँ बनती हैं।

(अ)—(भाववाचक)--जैसे करना--करनी, बोना--बोनी।

(आ)—(करणवाचक) जैसे, धौंकनी, ओढ़नी, कतरनी।

वैया—यह प्रत्यय ऐया का पर्यायी और "वाला" का समानार्थी है। इसका प्रयोग एकाक्षरी धातुओं के साथ अधिक होता है; जैसे, सवैया, गवैया, छवैया, दिवैया, रखवैया।

(२) हिंदी तद्धित

आ—यह प्रत्यय कई एक संज्ञाओं में लगाकर विशेषण बनाते हैं; जैसे, भूख—भूखा, प्यास—प्यासा, मैल—मैला।

आइँद—(भाववाचक) जैसे, कपड़ा—कपड़ाइँद (जले की बास), सड़ाइँद, घिनाइँद।

आई—इस प्रत्यय के योग से विशेषणों और संज्ञाओं से भाववाचक संज्ञाएँ बनती हैं; जैसे, भला—भलाई, बुरा--बुराई।

आऊ—(गुणवाचक)--जैसे, आगे--अगाऊ, पंडित---पंडिताऊ।

आना—(स्थानवाचक)—जैसे, राजपूत—राजपूताना, हिंदू—हिंदुआना, तिलंगा—तिलंगाना, उड़िया—उड़ियाना।

आयत—(भाववाचक)—जैसे, बहुत—बहुतायत, पंच—पंचायत, तीसरा—तिसरायत, तिहायत।

आहट—(भाववाचक)—जैसे, कड़ुवा—कड़ुवाहट, पीला—पिलाहट।

इया—इस प्रत्यय के द्वारा कुछ संज्ञाओं से ऊनवाचक संज्ञाएँ बनती हैं; जैसे, खाट—खटिया, फोड़ा—फुड़िया।

ई—यह प्रत्यय कई एक संज्ञाओं में लगाने से विशेषण बनते हैं; जैसे, भार—भारी, ऊन—ऊनी, देश—देशी।

(अ) कई एक अकारांत या आकारांत संज्ञाओं में यह प्रत्यय लगाने से ऊनवाचक संज्ञाएँ बनती हैं; जैसे, पहाड़—पहाड़ी, घाट—घाटी, ढोलकी, डोरी, टोकरी, रस्सी।

(आ) किसी किसी विशेषण वा संज्ञा में यह प्रत्यय लगाकर भाववाचक संज्ञाएँ बनाते हैं; जैसे, सावधान—सावधानी, गरीब—गरीबी, चोर—चोरी, खेत—खेती।

ईला—इस प्रत्यय के योग से विशेषण बनते हैं; जैसे, रंग—रँगीला,—छबि—छबीला, लाज—लजीला, रस—रसीला।

ऊ—इस प्रत्यय के योग से विशेषण बनते हैं; जैसे, ढाल—ढालू, घर—घरू, बाजार—बाजारू, पेट—पेटू, गरज—गरजू।

एरा—(व्यापारवाचक)—जैसे, साँप—सँपेरा, काँसा—कसेरा। (संबंधवाचक—जैसे, मामा—ममेरा, फूफा—फुफेरा।)

ऐला—(गुणवाचक)—जैसे, बन—बनैला, धूम—धुमैला।

औती—(भाववाचक)—बाप—बपौती, बूढ़ा—बुढ़ौती।

क—(अव्यय से संज्ञा)—जैसे, धड़—धड़क, भड़—भड़क, धम—धमक।

पन—(भाववाचक)—जैसे, काला—कालापन, पागल—पागलपन।

पा—(भाववाचक)—बूढ़ा—बुढ़ापा, राँड़—रँडापा।

री—(ऊनवाचक)—कोठा—कोठरी, छत्ता—छतरी।

ला—(गुणवाचक)—जैसे, आगे--अगला, पीछे--पिछला।

वंत—गुण के अर्थ में; दया—दयावंत, धन—धनवंत।

वाल—यह प्रत्यय "वाला" का संक्षेप है; उदा०—गया—गयावाल, प्रयाग—प्रयागवाल, पल्ली—पल्लीवाल।

वाला—कर्तृ अर्थ में; जैसे, टोपीवाला, घासवाला।

चौथा अध्याय

समास

३५६—दो या अधिक शब्दों का परस्पर संबंध बतानेवाले शब्दों अथवा प्रत्ययों का लोप होने पर उन दो या अधिक शब्दों से जो एक स्वतंत्र शब्द बनता है, उस शब्द को **सामासिक शब्द** कहते हैं; और उन दो या अधिक शब्दों का जो संयोग होता है, वह **समास** कहलाता है। उदा०--प्रेमसागर अर्थात प्रेम का समुद्र। इस उदाहरण में प्रेम, सागर, इन दो शब्दों का परस्पर संबंध बतानेवाले संबंध कारक के 'का' प्रत्यय का लोप होने से 'प्रेमसागर' एक स्वतंत्र शब्द बना है।

३५७—संस्कृत सामासिक शब्दों में बहुधा संधि होती है, पर हिंदी और दूसरी भाषाओं के शब्दों में नहीं होती। उदा०—राम + अवतार = रामावतार, पत्र + उत्तर = पत्रोत्तर, मनस् + योग = मनोयोग।

३५८—सामासिक शब्दों का संबंध व्यक्त कर दिखाने की रीति को **विग्रह** कहते हैं। "धन-संपन्न" समास का विग्रह "धन से संपन्न" है, जिससे जान पड़ता है कि "धन" और "संपन्न" शब्द करण-कारक से संबद्ध हैं।

३५९—किसी सामासिक शब्द में विभक्ति लगाने का प्रयोजन हो तो उसे समास के अंतिम स्वर में जोड़ते हैं; जैसे, **माँ-बाप** से, **राजकुल** में, **भाई-बहिनों** का,।

३६०—समासों के मुख्य चार भेद हैं। जिन दो शब्दों में समास होता है, उनकी प्रधानता अथवा अप्रधानता के तत्त्व पर ये भेद किये गये हैं।

जिस समास में पहला शब्द प्रायः प्रधान होता है, उसे **अव्ययी-भाव** समास कहते हैं। जिस समास में दूसरा शब्द प्रधान रहता है, उसे **तत्पुरुष** कहते हैं। जिसमें दोनों पद प्रधान होते हैं, वह **द्वंद्व** कहलाता है। जिसमें कोई शब्द प्रधान नहीं होता, उसे **बहुव्रीहि** कहते हैं। **कर्मधारय** और **द्विगु** तत्पुरुष के उपभेद हैं।

३६१—जिस समास में पहला शब्द प्रधान होता है और जो समूचा शब्द क्रिया-विशेषण अव्यय होता है, उसे **अव्ययी-भाव** समास कहते हैं; जैसे, यथाविधि, प्रतिदिन।

३६२—यथा (अनुसार), आ (तक), प्रति (प्रत्येक), यावत् (तक), वि (विना) से बने हुए संस्कृत अव्ययीभाव समास हिंदी में बहुधा आते हैं; जैसे, यथास्थान, आजन्म, यावज्जीवन, प्रतिदिन, व्यर्थ।

३६३—हिंदी अव्ययीभाव समास तीन प्रकार के होते हैं।

(अ) हिंदी—जैसे, निडर, निधड़क, भरपेट, अनजाने।

(आ) उर्दू (फ़ारसी अथवा अरबी); जैसे, हररोज, बेशक, बजिंस, बखूबी, नाहक।

(इ) मिश्रित अर्थात् दोनों भाषाओं के शब्दों के मेल से बने हुए; जैसे, हरघड़ी, हरदिन, बेकाम, बेखटके।

३६४—हिंदी में संज्ञा की द्विरुक्ति करके भी अव्ययीभाव समास बनाते हैं। उदा०—घर-घर, दिन-दिन, बूँद-बूँद। कभी कभी द्विरुक्त शब्दों के बीच में ही, ओं अथवा आ आता है; जैसे, मनही-मन, हाथों-हाथ, मुँहा-मुँह।

३६५—संज्ञाओं के समान अव्ययों की द्विरुक्ति से भी हिंदी में अव्ययीभाव समास होता है; जैसे, बीचोबीच, धड़ा-धड़, पास-पास, धीरे-धीरे।

३६६—जिस समास में दूसरा शब्द प्रधान होता है, उसे **तत्पुरुष** कहते हैं। इस समास में पहला शब्द बहुधा संज्ञा अथवा विशेषण रहता है। उदा०—रसोई-घर, घुड़दौड़।

३६७—तत्पुरुष समास के विग्रह में उसके दोनों शब्दों में भिन्न भिन्न विभक्तियाँ लगती हैं; जैसे, रसोई-घर, घुड़दौड़।

३६८—तत्पुरुष के प्रथम शब्द में कर्त्ता और संबोधन कारकों को छोड़ शेष जिस विभक्ति का लोप होता है, उसी के कारक के अनुसार इस समास का नाम होता है; जैसे,

करण तत्पुरुष—(संस्कृत) ईश्वरदत्त, तुलसीकृत, भक्तिवश।

(हिंदी) मनमाना, गुणभरा, दईमारा, कपड़छन, मदमाता।

संप्रदान तत्पुरुष —(संस्कृत) कृष्णार्पण, देशभक्ति।

(हिंदी) रसोईघर, गुड़बच, ठकुर-सुहाती, हथकड़ी।

अपादान तत्पुरुष—(संस्कृत) ऋणमुक्त, पदच्युत।

(हिंदी) देश-निकाला, गुरुभाई, कामचोर, जन्मरोगी।

संबंध तत्पुरुष—(संस्कृत) राजपुत्र, प्रजापति, देवालय।

(हिंदी) वनमानुस, घुड़दौड़, राजपूत, लखपती।

अधिकरण तत्पुरुष —(संस्कृत) ग्रामवास, गृहस्थ।

(हिंदी) मनमौजी, आप-बीती, काना-फूसी।

३६९—जिस समास के विग्रह में दोनों पदों के साथ एक ही (कर्त्ता-कारक की) विभक्ति आती है, उसे **कर्म-धारय** कहते हैं। उदा०—परमात्मा, गुरु-देव।

३७०—कर्मधारय समास दो प्रकार का है। जिस समास से विशेष्य-विशेषण भाव सूचित होता है, उसे **विशेषता-वाचक** कर्मधारय कहते हैं; और जिससे उपमानोपमेय-भाव* जाना जाता है, उसे **उपमावाचक** कर्मधारय कहते हैं।

३७१—विशेषतावाचक कर्मधारय समास के आगे लिखे तीन भेद होते हैं—

---

* उपमेय—जिसकी उपमा दी जाय। उपमान जिससे उपमा दी जाय।

(१) **विशेषणपूर्वपद**—जिसमें प्रथम पद विशेषण हो।

संस्कृत उदाहरण—पीतांबर, नीलकमल, सद्गुण।

हिंदी उदाहरण—नीलगाय, कालीमिर्च, मँझधार।

(२) **विशेषणोत्तरपद**—जिसमें दूसरा पद विशेषण हो।

संस्कृत उदा०—देशांतर, पुरुषोत्तम, नराधम, मुनिवर।

(३) **विशेषणोभयपद**--जिसमें दोनों पद विशेषण होते हैं।

संस्कृत उदा०—नीलपीत, शीतोष्ण, श्यामसुंदर।

हिंदी उदा०—लालपीला, भलाबुरा, ऊँचनीच, खटमिट्ठा।

३७२—उपमावाचक कर्मधारय के दो भेद हैं—

(१) **उपमान-पूर्वपद**—जिस वस्तु से उपमा देते हैं, उसका वाचक शब्द जब समास के आरंभ में आता है, तब उसे उपमान-पूर्वपद समास कहते हैं। उदा०—चंद्रमुख (चंद्र सरीखा मुख), घनश्याम (घन सरीखा श्याम), वज्रदेह, प्राणप्रिय।

(२) **उपमानोत्तरपद**---जिसमें दूसरा पद उपमान होता है; जैसे, चरणकमल, राजर्षि, नरसिंह।

३७३—जिस कर्मधारय समास में पहला पद संख्यावाचक विशेषण होता है और जिससे समुदाय (समाहार) का बोध होता है, उसे **द्विगु** कहते हैं।

संस्कृत उदा०—त्रिभुवन (तीनों भुवनों का समाहार), त्रैलोक्य (तीनों लोकों का समाहार), षट्पदी (छः पदों का समुदाय), पंचवटी, नवग्रह।

हिंदी उदा०—पंसेरी, दोपहर, चौमासा, सतसई।

३७४—जिस समास में दोनों संज्ञाएँ अथवा उनका समाहार प्रधान रहता है, उसे **द्वंद्व** समास कहते हैं। द्वंद्व समास दो प्रकार का होता है—

(१) **इतरेतरद्वंद्व**—जिस समास के दोनों पद "और" समुच्चयबोधक से जुड़े हुए हों, पर उस समुच्चयबोधक का लोप हो, उसे **इतरेतरद्वंद्व** कहते हैं; जैसे, ऋषिमुनि, राधाकृष्ण, गाय-बैल, भाई-बहिन, नाक-कान।

(२) **वैकल्पिकद्वंद्व**—जब दो पद "वा", "अथवा" आदि (विकल्पसूचक) समुच्चयबोधक के द्वारा मिले हों और उस समुच्चयबोधक का लोप हो जाय, तब उन पदों के समास को **वैकल्पिकद्वंद्व** कहते हैं। इस समास में बहुधा परस्पर-विरोधी शब्दों का मेल होता है; जैसे, जात-कुजात, पाप-पुण्य, धर्माधर्म।

३७५—जिस समास में कोई पद प्रधान नहीं होता और जो अपने पदों से भिन्न किसी संज्ञा का विशेषण होता है, उसे **बहुव्रीहि समास** कहते हैं; जैसे, चंद्रमौलि (चंद्र है सिर पर जिसके, शिव), अनंत (नहीं है अंत जिसका, ईश्वर)।

३७६—इस समास के विग्रह में संबंधवाचक सर्वनाम के साथ कर्त्ता और संबोधन कारकों को छोड़ शेष जिस कारक की विभक्ति लगती है, उसी के अनुसार इस समास का नाम होता है; जैसे—

करण-बहुव्रीहि—जितेंद्रिय (जीती गई हैं इंद्रियाँ जिसके द्वारा)। कृतकार्य्य (किया गया है कार्य जिसके द्वारा)।

संबंध-बहुव्रीहि—दशानन (दस हैं मुँह जिसके), सहस्रबाहु (सहस्र हैं बाहु जिसके), पीतांबर (पीत है अंबर—कपड़ा—जिसका) ।

हिंदी—कनफटा, दुधमुँहा, मिठबोला, बारहसिंघा ।

अधिकरण-बहुव्रीहि—प्रफुल्लकमल (खिले हैं कमल जिसमें, वह तालाब), इंद्रादि (इंद्र हैं आदि में जिनके वे देवता) ।

हिंदी—पतझड़, सतखड़ा ।

तीसरा भाग
वाक्य-विन्यास
पहला परिच्छेद
वाक्य-रचना
पहला अध्याय
प्रस्तावना

३७७—**वाक्य** में शब्दों का परस्पर ठीक ठीक संबंध जानने के लिए उनका एक दूसरे से **अन्वय**, एक दूसरे पर उनका **अधिकार** और उनका **क्रम** जानने की आवश्यकता होती है।

(क) दो शब्दों में लिंग, वचन, पुरुष, कारक अथवा काल की जो समानता रहती है, उसे **अन्वय** कहते हैं; जैसे, छोटा लड़का रोता है। इस वाक्य में "छोटा" शब्द का "लड़का" शब्द से लिंग और वचन का अन्वय है; और "रोता है" शब्द "लड़का" शब्द से लिंग, वचन और पुरुष में अन्वित है।

(ख) **अधिकार** उस संबंध को कहते हैं जिसके कारण किसी एक शब्द के प्रयोग से दूसरी संज्ञा या सर्वनाम किसी विशेष कारक में आता है; जैसे, लड़का बंदर से डरता है। इस वाक्य में डरना क्रिया के योग से "बंदर" शब्द अपादान कारक में आया है।

(ग) शब्दों को उनके अर्थ और संबंध की प्रधानता के अनुसार वाक्य में यथा-स्थान रखना क्रम कहलाता है।

३७८—वाक्य में शब्दों का परस्पर संबंध दो रीतियों से बतलाया जा सकता है—

(१) शब्दों को उनके अर्थ और प्रयोग के अनुसार मिलाकर वाक्य बनाने से और (२) वाक्य के अवयवों को उनके अर्थ और प्रयोग के अनुसार अलग अलग करने से। पहली रीति को **वाक्य-रचना** और दूसरी रीति को **वाक्य-पृथक्करण** कहते हैं।

३७९—वाक्य में मुख्य दो शब्द होते हैं—(१) उद्देश्य और (२) विधेय। वाक्य में जिस वस्तु के विषय में विधान किया जाता है, उसे सूचित करनेवाले शब्द को **उद्देश्य** कहते हैं, और उद्देश्य के विषय में विधान करनेवाला शब्द **विधेय** कहलाता है। उदा० "पानी गिरा।" इस वाक्य में "पानी" शब्द उद्देश्य और "गिरा" विधेय है।

३८०—जब वाक्य में दो ही शब्द रहते हैं, तब उद्देश्य में संज्ञा अथवा सर्वनाम और विधेय में क्रिया आती है। उद्देश्य की संज्ञा बहुधा कर्त्ता-कारक में रहती है और क्रिया किसी एक काल, पुरुष, लिंग, वचन, वाच्य, अर्थ और प्रयोग में आती है। यदि क्रिया सकर्मक हो तो उसके साथ भी **कर्म** आता है। वाक्य के और भी खंड होते हैं; पर वे सब मुख्य दोनों खंडों के आश्रित रहते हैं।

दूसरा अध्याय

पदक्रम

३८१—वाक्य में बहुधा पहले कर्त्ता वा उद्देश्य, फिर कर्म वा पूर्ति और अंत में क्रिया रखते हैं; जैसे, लड़का पुस्तक पढ़ता है। सिपाही सूबेदार बनाया गया। मोहन चतुर जान पड़ता है। हवा चली।

३८२—द्विकर्मक क्रियाओं में गौण कर्म पहले और मुख्य कर्म पीछे आता है; जैसे, हमने अपने मित्र को चिट्ठी भेजी।

३८३—दूसरे कारकों में आनेवाले शब्द उन शब्दों के पूर्व आते हैं जिनसे उनका संबंध रहता है, जैसे, मेरे मित्र की चिट्ठी कई दिन में आई।

३८४—विशेषण संज्ञा के पहले और क्रियाविशेषण (वा क्रिया-विशेषण-वाक्यांश) बहुधा क्रिया के पहले आते हैं; जैसे, एक भेड़िया **किसी** नदी में **ऊपर की तरफ** पानी पी रहा था।

३८५—अवधारण के लिए ऊपर लिखे क्रम में बहुत कुछ अंतर पड़ जाता है; जैसे—

(अ) कर्त्ता और कर्म का स्थानांतर—**लड़के को** मैंने नहीं देखा।

(आ) संप्रदान का स्थानांतर—तुम यह चिट्ठी **मंत्री को** देना।

(इ) क्रिया का स्थानांतर—मैंने बुलाया एक को और **आये** दस।

(ई) क्रिया-विशेषण का स्थानांतर—**आज सवेरे** पानी गिरा।

३८६—समानाधिकरण शब्द मुख्य शब्द के पीछे आता है और पिछले शब्द में विभक्ति का प्रयोग होता है; जैसे, तेरा भाई कल्लू बाहर खड़ा है भवानी सुनार के पास।

३८७—अवधारण के लिए भेदक और भेद्य के बीच में संज्ञा-विशेषण और क्रिया-विशेषण आ सकते हैं; जैसे, राम का **वन को** जाना। मैं तेरा **क्योंकर** भरोसा करूँ।

३८८—संबंधवाचक और उसके अनुसंबंधी सर्वनाम के कर्मादि कारक बहुधा वाक्य के आदि में आते हैं; जैसे, उसके पास एक पुस्तक है **जिसमें** देवताओं के चित्र हैं।

३८९—प्रश्नवाचक क्रियाविशेषण और सर्वनाम मुख्य क्रिया और सहायक क्रिया के बीच में भी आ सकते हैं; जैसे, वह जाता **कब** था? हम जा **कैसे** सकेंगे? तू होता **कौन** है?

३९०—भी, ही, तो, भर, तक और मात्र वाक्य में इन्हीं शब्दों के पश्चात् आते हैं जिन पर इनके कारण अव-धारण होता है, और इनके स्थानांतर से वाक्य में अर्थांतर हो जाता है; जैसे, हम **भी** गाँव को जाते हैं। हम **तो** गाँव को जाते हैं। हम गाँव को जाते **तो** हैं।

३९१—संबंधवाचक क्रिया-विशेषण, जहाँ-तहाँ, जब-तब,

जैसे-तैसे आदि बहुधा वाक्य के आरंभ में आते हैं; जैसे, जब मैं बोलूँ तब तुम तुरंत उठकर भागना।

३९२—निषेधवाचक अव्यय नहीं और मत बहुधा क्रिया के पूर्व या पीछे आते हैं; जैसे, वह **नहीं** गया। तुम **मत** आओ। उसने आपको देखा **नहीं**। उसे बुलाना **मत**। 'न' बहुधा क्रिया के पूर्व आता है; जैसे, वह **न** गया।

३९३—संबंधसूचक अव्यय जिस संज्ञा से संबंध रखते हैं, उसके पीछे आते हैं; पर मारे, बिना, सिवा आदि कुछ अव्यय इसके पूर्व भी आते हैं; जैसे, दरजी कपड़ों समेत तर हो गया। लड़की मारे भूख के मर गई।

३९४—समुच्चयबोधक अव्यय जिन शब्दों अथवा वाक्यों को जोड़ते हैं, बहुधा उनके बीच में आते हैं; जैसे, हम उन्हें सुख देंगे, क्योंकि उन्होंने हमारे लिए बड़ा तप किया है।

३९५—विस्मयादि-बोधक और संबोधन-कारक बहुधा वाक्य के आरंभ में आते हैं; जैसे, अरे! यह क्या हुआ? मित्र, मेरे पास आओ।

तीसरा अध्याय

व्याख्या (पद-परिचय)

३९६—वाक्य का अर्थ पूर्णतया समझने के लिए व्याकरण शास्त्र की सहायता आवश्यक है और यह आवश्यकता वाक्यगत

शब्दों के रूप और उनका परस्पर संबंध जताने में पड़ती है। इस प्रक्रिया को **व्याख्या** अथवा **पद-परिचय** कहते हैं।

३९७—प्रत्येक शब्द-भेद की व्याख्या में जो जो वर्णन आवश्यक हैं, वे नीचे लिखे जाते हैं—

(१) संज्ञा—प्रकार, लिंग, वचन, कारक, संबंध।

(२) सर्वनाम—प्रकार, संबंधी संज्ञा, पुरुष, लिंग, वचन, कारक, संबंध।

(३) विशेषण—प्रकार, विशेष्य, लिंग, वचन, विकार (हो तो), अन्य संबंध।

(४) क्रिया—प्रकार, वाच्य, अर्थ, काल, पुरुष, लिंग, वचन, प्रयोग।

(५) क्रिया-विशेषण—प्रकार, विशेष्य, विकार (हो तो)।

(६) समुच्चयबोधक—प्रकार, अन्वित शब्द, वाक्यांश अथवा वाक्य।

(७) संबंधसूचक—प्रकार, संबंध।

(८) विस्मयादिबोधक—प्रकार, संबंध (हो तो)।

३९८—अब व्याख्या (पद-परिचय) के कुछ उदाहरण दिये जाते हैं। पहले सरल वाक्य-रचना के और फिर जटिल वाक्य-रचना के शब्दों की व्याख्या लिखी जायगी।

(क) सहज वाक्य-रचना के शब्द

(१) वाक्य—वाह ! क्या ही आनंद का समय है।

वाह—विस्मयादिबोधक अव्यय, आश्चर्यबोधक।

क्या ही—अवधारण-बोधक प्रकारवाचक सार्वनामिक विशेषण, विशेष्य 'आनंद', अविकारी शब्द।

आनंद का—संज्ञा, भाववाचक, पुल्लिंग, एकवचन, संबंध-कारक, संबंधी शब्द 'समय'।

समय—संज्ञा, भाववाचक, पुल्लिंग, एकवचन, प्रधान कर्त्ताकारक, 'है' क्रिया से अन्वित।

है—स्थितिबोधक अकर्मक क्रिया, कर्तृवाच्य, निश्चयार्थ, सामान्य वर्तमान-काल, अन्यपुरुष, पुल्लिंग, एकवचन, 'समय' कर्त्ताकारक से अन्वित, कर्त्तरिप्रयोग।

(२) वाक्य—जो अपने वचन को नहीं पालता, वह विश्वास के योग्य नहीं है।

जो—संबंधवाचक सर्वनाम, 'मनुष्य' संज्ञा की ओर संकेत करता है, अन्यपुरुष, पुल्लिंग, एकवचन, प्रधान कर्त्ता-कारक 'पालता' क्रिया का।

अपने—सर्वनाम, निजवाचक, 'जो' सर्वनाम की ओर संकेत करता है, अन्यपुरुष, एकवचन, संबंधकारक, संबंधी शब्द 'वचन को'।

वचन को—संज्ञा, भाववाचक, पुल्लिंग, एकवचन, सप्रत्यय कर्मकारक, 'पालता' सकर्मक क्रिया से अधिकृत।

नहीं—क्रिया-विशेषण, निषेधवाचक, विशेष्य 'पालता' क्रिया।

पालता—क्रिया, सकर्मक, कर्तृवाच्य, निश्चयार्थ, सामान्य वर्तमानकाल, अन्यपुरुष, पुल्लिंग, एकवचन, 'जो' कर्त्ता से अन्वित, 'वचन को' कर्म पर अधिकार, कर्त्तरिप्रयोग। 'है' लुप्त है।

वह—सर्वनाम, निश्चयवाचक 'जो' सर्वनाम की ओर संकेत करता है, अन्यपुरुष, पुल्लिंग, एकवचन, प्रधान कर्त्ता-कारक 'है' क्रिया का।

विश्वास के—संज्ञा, भाववाचक, पुल्लिंग, एकवचन, संबंधकारक, संबंधी शब्द 'योग्य'।

योग्य—विशेषण, गुणवाचक, विशेष्य 'वह', पुल्लिंग, एकवचन, विधेय-विशेषण। इसका प्रयोग संबंधसूचक के समान हुआ है।

नहीं—क्रियाविशेषण, निषेधवाचक, विशेष्य "है"।

है—स्थितिबोधक अकर्मक अपूर्ण क्रिया, कर्तृवाच्य, निश्चयार्थ, सामान्य वर्तमान-काल, अन्यपुरुष, पुल्लिंग, एकवचन, 'वह' कर्त्ता से अन्वित, कर्तरिप्रयोग। 'योग्य' पूर्ति है।

(ख) कठिन वाक्य-रचना के शब्द

इन शब्दों के उदाहरणों में प्रत्येक शब्द की व्याख्या न देकर केवल मुख्य मुख्य शब्दों की व्याख्या दी जायगी। किसी किसी शब्द की व्याख्या में केवल मुख्य बातें ही कही जायँगी।

(१) सिंह दिन को सोता है।

दिन को—अधिकरण के अर्थ में सप्रत्यय कर्मकारक।

(२) मुझे वहाँ जाना था।

मुझे—पुरुषवाचक सर्वनाम, वक्ता के नाम की ओर संकेत करता है, उत्तम पुरुष, उभयलिंग, एकवचन, कर्त्ता के अर्थ में संप्रदान-कारक, 'जाना था' क्रिया से संबंध।

जाना था—आवश्यकताबोधक संयुक्त क्रिया, अकर्मक, कर्तृवाच्य, निश्चयार्थ, सामान्य भूतकाल, अन्यपुरुष, पुल्लिंग, एकवचन, कर्त्ता 'मुझे', भावेप्रयोग।

(३) संवत् १९५७ वि० में बड़ा अकाल पड़ा था।

संवत्—अधिकरण कारक।

१९५७—क्रम-संख्यावाचक विशेषण, विशेष्य 'संवत्', पुल्लिंग, एकवचन।

वि० (विक्रमी)—विशेषण, गुणवाचक, विशेष्य 'संवत्', पुल्लिंग, एकवचन।

(४) किसी की निंदा न करनी चाहिए।

करनी चाहिए—आवश्यकता-बोधक संयुक्त क्रिया, सकर्मक, कर्तृवाच्य, निश्चयार्थ, संभाव्य भविष्यत्काल, (अर्थ सामान्य वर्तमान), अन्यपुरुष, स्त्रीलिंग, एकवचन, कर्त्ता 'मनुष्य को', (लुप्त), कर्म निंदा, कर्मणिप्रयोग।

(५) उस समय एक बड़ी भयानक आँधी आई।

उस—सार्वनामिक निश्चयवाचक विशेषण, विशेष्य समय, पुल्लिंग, एकवचन।

समय—अधिकरण कारक, विभक्ति लुप्त है।

बड़ी—परिमाणवाचक क्रिया-विशेषण, विशेष्य 'भयानक' विशेषण। मूल में आकारांत विशेषण होने के कारण विकृत रूप (स्त्रीलिंग, एकवचन)।

दूसरा परिच्छेद

वाक्य-पृथक्करण

वाक्यों के भेद

३९९—वाक्य-पृथक्करण के द्वारा शब्दों तथा वाक्यों का परस्पर संबंध जाना जाता है और वाक्यार्थ के स्पष्टीकरण में सहायता मिलती है।

४००—रचना के अनुसार वाक्य तीन प्रकार के होते हैं। (१) साधारण, (२) मिश्र और (३) संयुक्त।

(क) जिस वाक्य में एक उद्देश्य और एक विधेय रहता है, उसे **साधारण वाक्य** कहते हैं; जैसे, आज बहुत पानी बरसा। बिजली चमकती है।

(ख) जिस वाक्य में एक मुख्य उद्देश्य और विधेय के सिवा दो वा अधिक समापिका क्रियाएँ रहती हैं, उसे **मिश्र वाक्य** कहते हैं; जैसे, वह कौनसा मनुष्य है, जिसने महाप्रतापी राजा भोज का नाम न सुना हो। जब लड़का पाँच बरस का हुआ तब पिता ने उसे मदरसे को भेजा।

मिश्र वाक्य के मुख्य उद्देश्य और मुख्य विधेय से जो वाक्य बनता है, उसे **मुख्य उपवाक्य** और दूसरे वाक्यों को **आश्रित उपवाक्य** कहते हैं। आश्रित उपवाक्य स्वयं सार्थक नहीं होते, पर मुख्य के साथ आने से उनका अर्थ निकलता है। ऊपर के वाक्यों में "वह कौनसा मनुष्य है", और "तब पिता ने उसे मदरसे को भेजा" मुख्य उपवाक्य हैं और शेष उपवाक्य इनके आश्रित होने के कारण आश्रित उपवाक्य हैं।

(ग) जिस वाक्य में साधारण अथवा मिश्र वाक्यों का मेल रहता है, उसे **संयुक्त वाक्य** कहते हैं। संयुक्त वाक्य के मुख्य उपवाक्यों को **समानाधिकरण उपवाक्य** कहते हैं; क्योंकि वे एक दूसरे के आश्रित नहीं रहते। उदा०—

संपूर्ण प्रजा अब शांतिपूर्वक एक दूसरे से व्यवहार करती है और जाति-द्वेष क्रमशः घटता जाता है। (दो साधारण वाक्य)।

सिंह में सूँघने की शक्ति नहीं होती; इसलिए जब कोई शिकार उसकी दृष्टि के बाहर हो जाता है, तब वह अपनी जगह को लौट आता है। (एक साधारण और एक मिश्र वाक्य)।

जब भाप जमीन के पास इकट्ठी दिखाई देती है, तब उसे कुहरा कहते हैं; और जब वह हवा में कुछ ऊपर देख पड़ती है, तब उसे बादल कहते हैं। (दो मिश्र वाक्य)।

साधारण वाक्य

४०१—साधारण वाक्य में एक संज्ञा उद्देश्य और एक क्रिया विधेय होती है और इन्हें क्रमशः साधारण उद्देश्य और साधारण विधेय कहते हैं। उद्देश्य बहुधा कर्त्ता-कारक में रहता है; पर कभी कभी वह दूसरे कारकों में भी आता है; जैसे—

(१) प्रधान कर्त्ता कारक—**लड़का** दौड़ता है।

(२) अप्रधान कर्त्ता-कारक—**मैंने** लड़के को बुलाया।

(३) अप्रत्यय कर्मकारक (कर्मवाच्य में)—**चिट्ठी** लिखी जायगी। **दवा** बनाई गई है।

(४) करण-कारक (भाववाच्य में)—**लड़के** से चला नहीं जाता। **मुझसे** बोलते नहीं बनता।

(५) संप्रदान-कारक—**आपको** ऐसा न कहना चाहिए था।

४०२—साधारण उद्देश्य में संज्ञा अथवा संज्ञा के समान उपयोग में आनेवाला दूसरा शब्द आता है; जैसे—

(अ) संज्ञा—**हवा** चलती है। **लड़का** आया।

(आ) सर्वनाम—**तुम** पढ़ते थे। **वे** जायँगे।

(इ) विशेषण—**विद्वान्** सब जगह पूजा जाता है।

(ई) वाक्यांश—**वहाँ जाना** अच्छा नहीं है।

४०३—वाक्य के साधारण उद्देश्य में विशेषणादि जोड़कर उसका विस्तार करते हैं। उद्देश्य की संज्ञा का अर्थ नीचे लिखे शब्दों के द्वारा बढ़ाया जा सकता है—

(क) विशेषण—**अच्छा** लड़का माता पिता की आज्ञा मानता है। **लाखों** आदमी हैजे से मर जाते हैं।

(ख) संबंधकारक—**दर्शकों की** भीड़ बढ़ गई। **इस द्वीप की** स्त्रियाँ बड़ी चंचल होती हैं।

(ग) समानाधिकरण शब्द—परमहंस **कृष्णस्वामी** काशी को गये। उनके पिता **जयसिंह** यह बात नहीं चाहते थे।

(घ) वाक्यांश **दिन का थका हुआ** आदमी रात को खूब सोया। **काम सीखा हुआ** नौकर कठिनाई से मिलेगा।

[सूचना—एक से अधिक उद्देश्य-वर्द्धकों का उपयोग एक साथ हो सकता है; जैसे, **दशरथ** के ज्येष्ठ पुत्र रामचंद्र वन को गये।]

४०४—साधारण विधेय में केवल एक समापिका क्रिया रहती है, और वह किसी भी वाच्य, अर्थ, काल, पुरुष, लिंग, वचन और प्रयोग में आ सकती है। क्रिया शब्द में संयुक्त क्रिया का भी समावेश होता है। उदा०—लड़का **जाता है**। पत्थर **फेंका जायगा**। धीरे धीरे उजेला **होने लगा**।

(क) होना, बनना, दिखना, निकलना, कहलाना, आदि अपूर्ण अकर्मक क्रियाओं की अर्थ-पूर्ति के लिए संज्ञा, विशेषण अथवा और कोई गुणवाचक शब्द लगाया जाता है; जैसे, वह आदमी **पागल** है।

(ख) सकर्मक क्रिया का अर्थ कर्म के बिना पूरा नहीं होता और द्विकर्मक क्रियाओं में दो कर्म आते हैं; जैसे, पक्षी **घोंसले** बनाते हैं। वह आदमी **मुझे** कष्ट देता है।

४०५—कर्म के उद्देश्य के समान संज्ञा अथवा संज्ञा के समान उपयोग में आनेवाला कोई दूसरा शब्द आता है।

(क) संज्ञा—माली **फूल** तोड़ता है। सौदागर ने **घोड़े** बेचे।

(ख) सर्वनाम—वह आदमी **मुझे** बुलाता है। मैंने **उसको** नहीं देखा।

(ग) विशेषण—**दीनों** को मत सताओ। उसने **डूबते** को बचाया।

(घ) वाक्यांश—वह **खेत नापना** सीखता है। मैं **आपका इस तरह बातें बनाना** नहीं सुनूंगा। बकरियों ने **खेत का खेत** चर लिया।

४०६—गौण कर्म में भी ऊपर लिखे शब्द पाये जाते हैं; जैसे,

(क) संज्ञा—यज्ञदत्त **देवदत्त** को व्याकरण पढ़ाता है।

(ख) सर्वनाम **उसे** यह कपड़ा पहनाओ।

(ग) विशेषण—वे **भूखों** को भोजन और **नंगों** को वस्त्र देते हैं।

(घ) वाक्यांश—**आपके ऐसा कहने** को मैं कुछ भी मान नहीं देता।

४०७—मुख्य कर्म अप्रत्यय कर्म-कारक में रहता है और गौण-कर्म बहुधा संप्रदान कारक में आता है, परंतु कहना, बोलना, पूछना आदि द्विकर्मक क्रियाओं का गौण कर्म करण-कारक में आता है। उदा०—तुम **क्या** चाहते हो? मैंने **उसे** कहानी सुनाई। बाप **लड़के** से गिनती पूछता है।

४०८—अपूर्ण सकर्मक क्रियाओं के कर्तृवाच्य में कर्म के साथ **कर्मपूर्ति** आती है; जैसे, ईश्वर राई को **पर्वत** करता है। मैंने मिट्टी को **सोना** बनाया।

४०९—कर्मवाच्य में द्विकर्मक अपूर्ण सकर्मक क्रियाओं का मुख्य कर्म उद्देश्य हो जाता है और वह कर्त्ताकारक में आता है; परंतु गौण कर्म अथवा कर्मपूर्त्ति ज्यों की त्यों बनी रहती है; जैसे, **ब्राह्मण को दान** दिया गया। **मुझसे** वह **बात** पूछी जायगी। **सिपाही** सर्दार बनाया गया।

४१०—सजातीय क्रियाओं के साथ सजातीय कर्म आता है; जैसे, वह **अच्छी चाल** चलता है। योद्धा **सिंह की बैठक** बैठा।

४११—उद्देश्य के समान कर्म और पूर्त्ति का भी विस्तार होता है। यहाँ मुख्य कर्म के विस्तारक शब्दों की सूची दी जाती है—

(क) विशेषण—वह उड़ती हुई चिड़िया पहचानता है।

(ख) समानाधिकरण शब्द—मैं अपने मित्र गोपाल को बुलाता हूँ।

(ग) संबंध-कारक—उसने अपना हाथ बढ़ाया। आज का पाठ पढ़ लो।

(घ) वाक्यांश—मैंने नटों का बाँस पर चढ़ना देखा।

४१२—उद्देश्य की संज्ञा के समान विधेय की क्रिया का भी विस्तार होता है। विधेय की क्रिया क्रिया-विशेषण अथवा उसके समान उपयोग में आनेवाले शब्दों के द्वारा बढ़ाई जाती है।

४१३—विधेय की क्रिया का विस्तार आगे लिखे शब्दों से होता है—

(क) संज्ञा वा संज्ञा के वाक्यांश—**नौ दिन** चले **अढ़ाई कोस**।

(ख) क्रिया-विशेषण के समान उपयोग में आनेवाला विशेषण—वह **अच्छा** लिखता है। स्त्री **मधुर** गाती है।

(ग) विशेष्य के परे आनेवाला विशेषण—स्त्रियाँ **उदास** बैठी थीं। उसका लड़का **भला चंगा** खड़ा है।

(घ) पूर्ण तथा अपूर्ण क्रियाद्योतक कृदंत—लड़का **बैठे बैठे** उकता गया। स्त्री **बकते बकते** चली गई।

(ङ) पूर्वकालिक कृदंत—वह **उठकर** भागा। तुम **दौड़कर** चलते हो। वे **नहाकर** लौट आये।

(च) तत्कालबोधक कृदंत—उसने **आते ही** उपद्रव मचाया। स्त्री **गिरते ही** मर गई। वह **लेटते ही** सो जाता है।

(छ) स्वतंत्र वाक्यांश—**इससे थकावट दूर होकर** अच्छी नींद आती है। तुम **इतनी रात गये** क्यों आये ?

(ज) क्रिया-विशेषण और क्रिया-विशेषण वाक्यांश—गाड़ी **जल्दी** चलती है। राजा **आज** आये। चोर **कहीं न कहीं** छिपा है।

(झ) संबंध-सूचकांत शब्द—चिड़िया **धोती समेत** उड़ गई। वह **भूख के मारे** मर गया। मैं **उनके यहाँ** रहता हूँ।

(ञ) कर्त्ता, कर्म और संबंध कारकों को छोड़ शेष कारक—मैंने **चाकू से** फल काटा। वह **नहाने को** गया है।

[सूचना—एक से अधिक विधेय-वर्धक एक ही साथ उपयोग में आ

सकते हैं; जैसे, इसके बाद उसने तुरंत घर के स्वामी से कहकर लड़के को पढ़ने के लिए मदरसे को भेजा।]

४१४—अर्थ के अनुसार विधेय-वर्धक के (क्रियाविशेषण के समान) नीचे लिखे भेद होते हैं—

(१) कालवाचक—मैं **कल** आया। वह **दो महीने** बीमार रहा। उसने **बार बार** यह कहा।

(२) स्थानवाचक—**पंजाब में** हाथियों का वन नहीं है।

(३) रीतिवाचक—मोटी लकड़ी बड़ा बोझ **अच्छी तरह** सँभालती है। **मंत्री के द्वारा** राजा से भेंट हुई।

(४) परिमाणवाचक—लड़का **बहुत** रोता है। मैं **दस मील** चला।

[सूचना—नहीं (न, मत) को विधेय-विस्तारक न मानकर साधारण विधेय का एक अंग मानना उचित है।]

(५) कार्यकारणवाचक—**तुम्हारे आने से** मेरा काम सफल होगा। **पीने को** पानी लाओ।

४१५—पृथक्करण के कुछ उदाहरण—

(१) वह आदमी पागल हो गया। (२) इसमें वह बेचारा क्या कर सकता था! (३) एक सेर घी बस होगा। (४) खेत का खेत सूख गया। (५) यहाँ आये मुझे दो वर्ष हो गये। (६) राजमंदिर से बीस फुट की दूरी पर चारों तरफ दो फुट ऊँची दीवार है। (७) दुर्गंध के मारे वहाँ बैठा नहीं जाता था। (८) यह अपमान भला किससे सहा जायगा? (९) नेपालवाले बहुत दिनों से अपना राज्य बढ़ाते चले आते थे।

वाक्य	उद्देश्य		विधेय			
	साधारण उद्देश्य	उद्देश्यवर्धक	साधारण विधेय	विधेय-पूरक		विधेय-विस्तारक
				कर्म	पूर्त्ति	
(१)	आदमी	वह	हो गया	०	पागल	०
(२)	वह	बेचारा	कर सकता था	क्या	०	इसमें (स्थान)
(३)	घी	एक सेर	होगा	०	बस	०
(४)	खेत का खेत	०	सूख गया	०	०	०
(५)	वर्ष	दो	हो गये	०	०	मुझे यहाँ आये (काल)
(६)	दीवार	दो फुट ऊँची	है	०	०	राजमंदिर से......पर चारों तरफ़ (स्थान)
(७)	बैठना (लुप्त) (क्रियांतर्गत) अथवा किसी से (लुप्त)	०	बैठा नहीं जाता था	०	०	दुर्गंध के मारे (कारण) वहाँ (स्थान)
(८)	अपमान	यह	सहा जायगा	०	०	किससे (द्वारा)
(९)	नेपालवाले	०	चले आते थे	०	०	अपना राज्य बढ़ाते (रीति) बहुत दिनों से (काल)

मिश्र वाक्य

४१६—मिश्र वाक्य में मुख्य उपवाक्य एक ही रहता है; पर आश्रित उपवाक्य एक से अधिक आ सकते हैं। आश्रित उपवाक्य तीन प्रकार के होते हैं—संज्ञा-उपवाक्य, विशेषण-उपवाक्य और क्रियाविशेषण-उपवाक्य।

(क) मुख्य उपवाक्य की किसी संज्ञा या सर्वनाम के बदले जो उपवाक्य आता है, उसे **संज्ञा-उपवाक्य** कहते हैं; जैसे, तुमको यह कब योग्य है कि वन में बसो। इस वाक्य में 'वन में बसो' आश्रित उपवाक्य मुख्य उपवाक्य के 'यह' सर्वनाम के बदले में आया है।

(ख) मुख्य उपवाक्य की किसी संज्ञा की विशेषता बतानेवाला उपवाक्य **विशेषण-उपवाक्य** कहलाता है; जैसे, जो मनुष्य धनवान् होता है उसे सभी चाहते हैं। इस वाक्य में "जो मनुष्य धनवान् होता है", यह आश्रित उपवाक्य मुख्य उपवाक्य के "उसे" सर्वनाम की विशेषता बतलाता है।

(ग) **क्रिया-विशेषण-उपवाक्य** मुख्य उपवाक्य की क्रिया की विशेषता बतलाता है; जैसे, जब सबेरा हुआ, तब हम लोग बाहर गये। इस मिश्र वाक्य में 'जब सबेरा हुआ' क्रिया-विशेषण-उपवाक्य मुख्य उपवाक्य की "गया" क्रिया की विशेषता बतलाता है।

संज्ञा-उपवाक्य

४१७—संज्ञा-उपवाक्य मुख्य उपवाक्य के संबंध से बहुधा नीचे लिखे किसी एक स्थान में आता है—

(क) **उद्देश्य**—इससे जान पड़ता है "कि बुरी संगति का फल बुरा होता है"।

(ख) **कर्म**—वह जानती भी नहीं "कि धर्म किसे कहते हैं"। मैंने सुना है कि "आपके देश में अच्छा राज्य-प्रबंध है"।

पूर्त्ति—मेरा विचार है कि "हिंदी का एक साप्ताहिक पत्र निकालूँ"।

(ग) **समानाधिकरण शब्द**—इसका फल यह होता है कि "इनकी तादाद अधिक नहीं होने पाती"।

४१८—संज्ञा-उपवाक्य बहुधा स्वरूपवाचक समुच्चयबोधक 'कि' वा 'जो' से आरंभ होता है; जैसे, वह कहता है "**कि** मैं कल जाऊँगा"; आपको कब योग्य है "**कि** वन में बसो"। यही कारण है "**जो** मर्म ही उनकी समझ में नहीं आता।"

विशेषण-उपवाक्य

४१९—वाक्य में जिन जिन स्थानों में संज्ञा आती है, उन्हीं स्थानों में उसके साथ विशेषण-उपवाक्य लगाया जा सकता है; जैसे—

(क) उद्देश्य के साथ—एक बड़ा बुद्धिमान् डाक्टर था जो राजनीति के तत्त्व को अच्छी तरह समझता था।

(ख) कर्म के साथ—वहाँ जो कुछ देखने योग्य था, मैंने सब देख लिया।

(ग) पूर्ति के साथ—वह कौनसा मनुष्य है जिसने महाप्रतापी राजा भोज का नाम न सुना हो।

(घ) विधेय-विस्तार के साथ—आप उस अपकीर्ति पर ध्यान नहीं देते जो बालहत्या के कारण सारे संसार में होती है।

४२०—विशेषण उपवाक्य संबंधवाचक सर्वनाम "जो" से आरंभ होता है और मुख्य वाक्य में उसका नित्यसंबंधी 'सो' वा 'वह' आता है। कभी कभी जो और सो से बने हुए जैसा, जितना और वैसा, उतना भी आते हैं।

क्रिया-विशेषण-उपवाक्य

४२१—क्रिया-विशेषण-उपवाक्य मुख्य उपवाक्य के विधेय का काल, स्थान, रीति, परिमाण, कारण और फल प्रकाशित करता है।

४२२—अर्थ के अनुसार क्रिया-विशेषण-वाक्य पाँच प्रकार के होते हैं—(१) कालवाचक, (२) स्थानवाचक, (३) रीति-वाचक, (४) परिमाणवाचक, और (५) कार्य-कारणवाचक।

४२३—कालवाचक क्रिया-विशेषण-उपवाक्य से निश्चित काल, कालावस्थिति और संयोग के पौनःपुन्य का अर्थ सूचित होता है; जैसे, जब किसान यह फंदा खोलने को आवे, तब तुम साँस रोककर मुरदे के समान पड़ जाना। जब तक श्वासा तब तक आशा।

४२४—कालवाचक क्रिया-विशेषण-उपवाक्य जब, ज्योंही, जब जब, जब तक और जब कभी संबंधवाचक क्रिया-विशेषणों से आरंभ होते हैं और मुख्य वाक्य में उनके नित्यसंबंधी तब, त्योंही, तब तब, तब तक आते हैं।

४२५—स्थानवाचक क्रिया-विशेषण-उपवाक्य मुख्य उपवाक्य के संबंध से स्थिति और गति सूचित करता है; जैसे, जहाँ अभी समुद्र है, वहाँ किसी समय जंगल था। ये लोग भी वहीं से आये, जहाँ से आर्य लोग आये थे। जहाँ तुम गये थे, वहाँ गणेश भी गया था।

४२६—स्थानवाचक क्रिया-विशेषण-उपवाक्य में जहाँ, जहाँ से, जिधर आते हैं और मुख्य उपवाक्य में उनके नित्य-संबंधी तहाँ (वहाँ), वहाँ से और उधर आते हैं।

४२७—रीतिवाचक क्रिया-विशेषण-उपवाक्य से तुलना का अर्थ पाया जाता है; जैसे, दोनों वीर ऐसे टूटे, "जैसे हाथियों के यूथ पर सिंह टूटे"। "जैसे प्राणी आहार से जीते हैं, वैसे ही पेड़ खाद से बढ़ते हैं"।

४२८—रीतिवाचक क्रिया-विशेषण वाक्य जैसे, ज्यों (कविता में), 'मानों' से आरंभ होते हैं और मुख्य वाक्य में उनके नित्य-संबंधी 'वैसे' (ऐसे), कैसे, त्यों आते हैं।

४२९—परिमाणवाचक क्रिया-विशेषण-उपवाक्य से अधिकता, तुल्यता, न्यूनता, अनुपात आदि का बोध होता है; जैसे,

ज्यों ज्यों भीजै कामरी, त्यों त्यों भारी होय। जैसे जैसे आमदनी बढ़ती है, वैसे वैसे खर्च भी बढ़ता जाता है।

४३०—परिमाणवाचक क्रिया-विशेषण-उपवाक्य में ज्यों ज्यों, जैसे जैसे, जहाँ तक, जितना, आते हैं और मुख्य उपवाक्य में उनके नित्य-संबंधी वैसे वैसे (तैसे तैसे), त्यों त्यों, वहाँ तक, उतना रहते हैं।

४३१—कार्य-कारणवाचक क्रिया-विशेषण-उपवाक्यों से हेतु, संकेत, विरोध, कार्य वा परिणाम का अर्थ पाया जाता है; जैसे, हम उन्हें सुख देंगे, क्योंकि उन्होंने हमारे लिए बड़ा दुख सहा है। जो यह प्रसंग चलता, तो मैं भी सुनता। यद्यपि इस समय मेरी चेतना-शक्ति मूर्छित सी हो रही है, तो भी वह दृश्य आँखों के सामने घूम रहा है। इस बात की चर्चा हमने इसलिए की है कि उसकी शंका दूर हो जाय।

४३२—कार्य-कारणवाचक क्रिया-विशेषण-उपवाक्य व्यधिकरण समुच्चय-बोधकों से आरंभ होते हैं, जो बहुधा जोड़े से आते हैं; जैसे—

आश्रित वाक्य में	मुख्य वाक्य में
कि क्योंकि	इसलिए, इतना, ऐसा, यहाँ तक
जो, यदि, अगर, यद्यपि	तो, तथापि, तो भी, परंतु

चाहे—कैसा, कितना कितना—क्यों जो, जिससे, ताकि	तो भी, पर

४३३—अब कुछ मिश्र वाक्यों का पृथक्करण बताया जाता है। इसमें मुख्य तथा आश्रित उपवाक्यों का परस्पर संबंध बताकर साधारण वाक्यों के समान उनका पृथक्करण किया जाता है—

(१) बड़े संतोष की बात है कि ऐसे सहृदय सज्जनों के सामने हमें अभिनय दिखाने का अवसर प्राप्त हुआ है।

यह समूचा वाक्य मिश्र वाक्य है। इसमें "बड़े संतोष की बात है" मुख्य उपवाक्य है और दूसरा उपवाक्य आश्रित संज्ञा-उपवाक्य है। यह उपवाक्य मुख्य उपवाक्य की "बात" संज्ञा का समानाधिकरण है। इन दोनों उपवाक्यों का पृथक्करण अलग अलग साधारण वाक्यों के समान करना चाहिए।

(२) स्वामी, यहाँ कौन तुम्हारा बैरी है जिसके बधने को कोप कर कृपाण हाथ में ली है। (मिश्र वाक्य)

(क) स्वामी, यहाँ कौन तुम्हारा बैरी है। (मुख्य उपवाक्य)

(ख) जिसके बधने को कोप कर कृपाण हाथ में ली है। [विशेषण-उपवाक्य (क) का।]

(३) वेग चली आ जिससे सब एक-संग क्षेम-कुशल से कुटी में पहुँचें। (मिश्र वाक्य)

(क) वेग चली आ। (मुख्य उपवाक्य)

(ख) जिससे सब एक-संग क्षेम-कुशल से कुटी में पहुँचें। [क्रिया-विशेषण-उपवाक्य (क) का।]

(४) जो आदमी जिस समाज का है, उसके व्यवहारों का कुछ न कुछ असर उसके द्वारा समाज पर जरूर पड़ता है। (मिश्र वाक्य)

(क) उसके व्यवहारों का कुछ न कुछ असर उसके द्वारा समाज पर जरूर पड़ता है। (मुख्य उपवाक्य)

(ख) जो आदमी जिस समाज का है। [विशेषण-उपवाक्य (क) का।]

(५) सुना है, इस बार दैत्यों में भी बड़ा उत्साह फैल रहा है। (मिश्र वाक्य)

(क) सुना है। (मुख्य उपवाक्य)

(ख) इस बार दैत्यों में भी बड़ा उत्साह फैल रहा है। [संज्ञा-उपवाक्य (क) का कर्म।]

संयुक्त वाक्य

४३४—संयुक्त वाक्य में एक से अधिक प्रधान उपवाक्य रहते हैं और इन प्रधान उपवाक्यों के साथ बहुधा इनके आश्रित उपवाक्य भी रहते हैं।

४३५—संयुक्त वाक्यों के समानाधिकरण उपवाक्यों में चार प्रकार का संबंध पाया जाता है—संयोजक, विभाजक, विरोध-दर्शक और परिणामबोधक। यह संबंध बहुधा समानाधिकरण समुच्चयबोधक अव्ययों के द्वारा सूचित होता है; जैसे—

(१) संयोजक—मैं आगे बढ़ गया, और वह पीछे रह गया। विद्या से ज्ञान बढ़ता है, विचार-शक्ति प्राप्त होती है और मान मिलता है।

(२) विभाजक—मेरा भाई यहाँ आवेगा या मैं ही उसके पास जाऊँगा। उन्हें न नींद आती थी, न भूख प्यास लगती थी।

(३) विरोधदर्शक—ये लोग नये बसनेवालों से सदैव लड़ा करते थे; परंतु धीरे धीरे जंगल-पहाड़ों में भगा दिये गये। कामनाओं के प्रबल हो जाने से आदमी दुराचार नहीं करते; किंतु अंतःकरण के निर्बल हो जाने से वे वैसा करते हैं।

परिणामबोधक—शाहजहाँ इस बेगम को बहुत चाहता था; इसलिए उसे इस रौजे के बनाने की बड़ी रुचि हुई। मुझे उन लोगों का भेद लेना था; सो मैं वहाँ ठहरकर उनकी बातें सुनने लगा।

४३६—अब संयुक्त वाक्य के पृथक्करण का एक उदाहरण दिया जाता है। इसमें संयुक्त वाक्य के प्रधान उपवाक्यों का परस्पर संबंध बताना पड़ता है। शेष बातें साधारण अथवा मिश्र वाक्यों के समान कही जाती हैं। जैसे—

(१) दो-एक दिन आते हुए दासी ने उसको देखा था; किंतु वह संध्या के पीछे आता था, इससे वह उसे पहचान न सकी; और उसने यही जाना कि नौकर ही चुपचाप निकल जाता है। (संयुक्त वाक्य)

(क) दो-एक दिन आते हुए दासी ने उसको देखा था। (मुख्य उपवाक्य; ख, ग, घ का समानाधिकरण)

(ख) किंतु वह संध्या के पीछे आता था। (मुख्य उपवाक्य, ग, घ का समानाधिकरण; क का विरोधदर्शक)

मनोरंजन-पुस्तकमाला

जायसी ग्रंथावली

(संशोधित संस्करण)

संपादक—श्रीयुत पं० रामचंद्र

कविवर मलिक मुहम्मद जायसी का
वत" हिंदी के सर्वोत्तम प्रबंध काव्यों में है
के माधुर्य और भावों की गंभीरता के ि
बहुत ही उच्च कोटि का है। पर एक तो
अवधी, दूसरे भाव गंभीर, और तीसरे
इसका कोई शुद्ध और सुंदर संस्करण नहीं
इसका पठन-पाठन अब तक बंद सा था
इसका बहुत सुंदर और शुद्ध संस्करण प्र
प्रति पृष्ठ में कठिन शब्दों के अर्थ तथा दू
दे दिये हैं, जिससे यह काव्य साधारण
समझने योग्य हो गया है। पुस्तक का प
शुद्ध किया गया है। आरंभ में इसके स
हस्त समालोचक ने प्रायः ढाई सौ पृष्ठों
आलोचना कर दी है, जिसके कारण सोन
गई है। अंत में जायसी का अखरावट नाम
है। बड़े आकार के प्रायः ७०० पृष्ठों की
का मूल्य केवल ३।) है।

मिलने का पता—

मैनेजर इंडियन प्रेस, लिमिटेड